

# संगोष्ठी सौरभ

(राष्ट्रिय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोधपत्र संग्रह)

२०१८-१९

प्रधानसम्पादक

प्रो. सुदेश कुमार शर्मा

सम्पादक

डॉ. गीता दुबे



आधुनिक विषय विभाग

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय)

क.जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ

विद्याविहार, मुम्बई - ७७

# संगोष्ठी सौरभ

( राष्ट्रिय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोधपत्र संग्रह )

२०१८-१९



आधुनिक विषय विभाग

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान

( मानित विश्वविद्यालय )

( NAAC द्वारा 'A' श्रेणी में प्रत्यायित )

(मानवसंसाधनविकासमन्त्रालय, भारत सरकार के अधीन)

क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ

विद्याविहार, मुम्बई - ४०० ०७७

# संगोष्ठी सौरभ

पुस्तकनाम	- संगोष्ठी सौरभ (आधुनिक विषय विभागीय पुस्तक )
ISBN	- 978-81-935216-5-6
©	- प्रकाशकाधीन
प्रकाशक	- राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, (मानित विश्वविद्यालय) क.जे.सोमैया संस्कृत विद्यापीठ, विद्याविहार, मुम्बई-77
संरक्षक	- प्रो. परमेश्वरनारायणशास्त्री, कुलपति, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, (मा. वि.), नई दिल्ली
प्रधानसम्पादक	- प्रो. सुदेश कुमार शर्मा, प्राचार्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, (मा. वि.), क.जे.सोमैया संस्कृत विद्यापीठ, विद्याविहार, मुम्बई-77 (महाराष्ट्र)
सम्पादकमण्डल	- डॉ. (श्रीमती) गीता दूबे डॉ. (श्रीमती) श्वेता सूद डॉ. रंजय कुमार सिंह डॉ. (श्रीमती) सुमन सिंह श्री शंकर आंधळे डॉ. (श्रीमती) मिनाक्षी बर्हाटे सुश्री वैशाली निवडुंगे
प्रकाशनवर्ष	- 2018-19
मुखपृष्ठ एवं चित्र संयोजन	- डॉ.(श्रीमती)सुमन सिंह, सुश्री वैशाली निवडुंगे ।
अक्षरसंयोजन	- श्री सचिन शिंदे ।
मुद्रक	- वन्दना आर्टस्, बी-56, भूमितल स्टेशन प्लाज़ा, स्टेशन रोड, भाण्डुप (पश्चिम), मुम्बई - 400 078, महाराष्ट्र, भारत ।

### संपादकीय

मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार के अधीन राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.) देश के विभिन्न भागों में बारह परिसरों में व्याप्त है। इसका मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है। उन्हीं बारह परिसरों में से एक परिसर क. जे. सौमैया संस्कृत विद्यापीठ नाम से विद्याविहार, मुम्बई में अपनी कुछ विशिष्टताओं के साथ स्थित है। मुम्बई परिसर में पारम्परिक पद्धति से संस्कृत शिक्षण के साथ आधुनिक विषयों की भी शिक्षा दी जाती है। इस विद्यापीठ में संस्कृत के व्याकरण विभाग, साहित्य विभाग, ज्योतिष विभाग, शिक्षा शास्त्र विभाग के साथ ही आधुनिक विषय विभाग भी एक सुविधा सम्पन्न विभाग है। आधुनिक विषय विभाग के अन्तर्गत हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी, राजनीति विज्ञान, शारीरिक शिक्षा, संगणक एवं पर्यावरण सम्बन्धी अध्यापन कार्य किया जाता है।

हमें सूचित करते हुए बड़ो प्रसन्नता हो रही है कि आधुनिक विषय विभाग द्वारा सारस्वत समारोह के अन्तर्गत राष्ट्रिय शोध संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध पत्रों का प्रकाशन 'संगोष्ठी सौरभ' नाम से किया जा रहा है। भारत वर्ष में हिन्दी के साथ ही विविध भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए परिसर में अध्ययनरत छात्रों का भाषा सम्बन्धी पूर्ण विकास हो साथ ही सभी भारतीय भाषाओं के प्रति छात्रों के मन में सम्मान की भावना स्थापित हो। एतदर्थ इस पुस्तक को तीन भाषाओं हिन्दी, मराठी एवं अंग्रेजी में प्रकाशित किया जा रहा है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में मुम्बई परिसर के प्राचार्य प्रा. सुदेश कुमार शर्मा का हमें मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। अतः हम उनके प्रति भूरि-भूरि कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। साथ ही व्याकरण विभाग के अध्यक्ष प्रो. बोधकुमार झा का अतिशय सहयोग प्राप्त हुआ है। अतः हम उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। इसके साथ ही अन्य सभी विभागाध्यक्षों एवं सहयोगी प्राध्यापकों का उत्साह वर्धन और सहयोग प्राप्त हुआ है। हम उन सभी के प्रति व्यक्तिशः आभार व्यक्त करते हैं। पुस्तक प्रकाशन में टंकण मुद्रण कार्य हेतु श्री सचिन शिंदे का जो सहयोग मिला है उसके लिए साधुवाद देते हैं।

इस पुस्तक के सभी लेखकों के प्रति हम आभारी हैं। 'संगोष्ठी सौरभ' के पुस्तक रूप में आने में हमारे सभी साथी-संगी सहयोगी रहे हैं उन सभी का सहयोग एवं स्नेह ही हमारा संवल रहा है। उन सबके प्रति आभार। हम ऐसी कामना करते हैं कि आगे भी सभी लेखकों का सहयोग प्राप्त होता रहेगा। अस्तु।

# संगोष्ठी सौरभ

राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानम्,

(मानितविश्वविद्यालयः)

(भारतशासनमानवसंसाधनविकासमन्त्रालयाधीनम्)

क. जे. सोमैयासंस्कृतविद्यापीठम्, विद्याविहारः,

मुम्बई - 400 077



Rashtriya Sanskrit Sansthanam

(Deemed University)

(Under MHRD, Govt. of India)

K.J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham

Vidyavihar,

Mumbai-400077



## शुभाशंसा

प्रसन्नता का विषय है कि राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (मा.वि.) क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ, मुम्बई के आधुनिक विषय विभाग द्वारा राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी में प्रस्तुत महत्वपूर्ण शोधलेखों को संग्रहीत कर पुस्तक कलेवर में 'संगोष्ठी सौरभ' नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। इस पुस्तक में हिन्दी, मराठी एवं अंग्रेजी इन तीन भाषाओं के माध्यम से विविध विषयों का समुपस्थापन किया गया है। आधुनिक विषय विभाग की विभागाध्यक्षा डॉ. (श्रीमती) गीता दूबे के संयोजकत्व में दिनांक 27 से 28 फरवरी, 2019 तक राष्ट्रीय संगोष्ठी का समायोजन विद्यापीठ में सम्पन्न हुआ था। शोध संगोष्ठी एवं कतिपय गणमान्य विद्वानों के शोध निबन्धों का यह संग्रह छात्र, गवेषक एवं अध्यापकों के लिए निश्चित रूप से उपादेय है।

इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु आधुनिक विषय विभाग साधुवाद का भागी है। पुस्तक में संपादक मण्डल सदस्य तथा जिनका लेख 'संगोष्ठी सौरभ' में प्रकाशित है, उन सभी के लिए मैं अपनी शुभकामना प्रकट करता हूँ।

(प्रो. सुदेश कुमार शर्मा)

प्राचार्य

## शोधपत्रानुक्रमणिका

क्र. सं.	शोध शीर्षक	लेखक	पृष्ठाङ्क
1.	वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक शिक्षा	प्रो. प्रकाशचन्द्र	1
2.	वैश्वीकरण और शारीरिक शिक्षा	डॉ. ओम प्रकाश भड़ाना	6
3.	राष्ट्र के निर्माण में ज्योतिषीय योगानुशीलन	प्रो. भारत भूषण मिश्र	10
4.	Patience @ Pinnacle	Dr. S V R Murthy	15
5.	वैश्विक हिन्दी कविता और प्रवासी मन	डॉ. सतीश पाण्डेय	17
6.	The Deconstructive Trends in the Vyaktiviveka	Dr. Narayanan E. R.	22
7.	Universalization of Education : Problems and their Remedies	Dr. V. S. V. Bhaskar Reddy	25
8.	समीक्षा, संकल्पना आणि स्वरूप	डॉ. नवनाथ गोरे	30
9.	मिताहार, पथ्य, अपथ्य, हिताहार व अहिताहार का यौगिक स्वरूप	डॉ. सोमवीर आर्य	35
10.	मानवीय संवेदना के कथाकार : फणीश्वरनाथ रेणु	डॉ. प्रवीणचन्द्र बिष्ट	46
11.	स्त्रीवादी समीक्षा : संकल्पना आणि स्वरूप	डॉ. प्राजक्ता शिन्ने	52
12.	शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में श्वासन की उपयोगिता	डॉ. प्रकाश वर्मा (सोनी)	60
13.	एक दुनिया समानान्तर : एक विश्लेषण	डॉ. गीता संतोष यादव	71
14.	हिन्दी का वैश्विक परिदृश्य	डॉ. शैलेशकुमार दुबे	74
15.	भाषेच्या विकासातील उपाययोजना	प्रा. ललित पाटील	77
16.	प्रेमचन्द-प्रसाद युगीन हिन्दी कहानी : एक अवलोकन	डॉ. गीता दूबे	81
17.	Moral Dilemmas in Graham Greene's <i>The Quiet American</i>	Dr. Shweta Sood	86
18.	भारतीय लोकतंत्र में राष्ट्र निर्माण एवं चुनौतियाँ	डॉ. रंजय कुमार सिंह	92
19.	Potrayal of Metropolitan and Familial Landscape in Girish Karnad's <i>Wedding</i>	Dr. M. K. Sheeba	99

## संगोष्ठी सौरभ

---

### Album & Boiled Beans of Toast

20.	Changed Security Discourse in the Context of South Asia : A theoretical Perspective	Dr. Suman Singh	102
21.	Effects of Globalization over Physical Education & Sports	Dr. Shankar Baburao Andhale	109
22.	साहित्य समीक्षेचे स्वरूप	डॉ. मिनाक्षी बर्हाटे	114
23.	आस्वादक साहित्य समीक्षा : एक चिंतन	डॉ. दैवत सावंत	118
24.	Operators using in C++ to Software Development	Miss Vaishali Nivdunge	123
25.	Globalization and Physical Education	Mr. Vijay Tandelkar	129
26.	शारीरिक स्वास्थ्य और योग	डॉ. विजय पाटील	133
27.	शारीरिक शिक्षा एवं योग वैश्वीकरण के सन्दर्भ में	डॉ. रविकुमार (शास्त्री)	141
28.	विज्ञापन में हिन्दी भाषा का महत्त्व	सुश्री विदुषी बोल्ला	147
29.	अथर्ववेद में चिकित्सा (निदान) विज्ञान	विजेता	154
30.	शारीरिक शिक्षा एवं महर्षि पतंजलि कृत योग	श्री वेदप्रकाश आर्य	159



# वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक शिक्षा

प्रो. प्रकाशचन्द्र

सभी देश अपने संसाधनों एवं विविध योजनाओं के द्वारा अपने-अपने देश के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक विकास हेतु अनुसन्धान तथा उनका क्रियान्वयन करते रहते हैं, तथापि दूसरे देशों के साथ सम्बन्ध बनाये बिना हम उनके विचारों को नहीं जान सकते, विश्व में प्राचीनकाल से ही लोगों में पारस्परिक व्यापारिक, सांसारिक एवं राजनीतिक समझ व सहयोग रहा है।

वर्तमान में वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण की संकल्पना एवं अवधारणा बहुत ही तीव्रता से बढ़ती दिखाई दे रही है।

वैश्वीकरण धारणा मुख्यतः आर्थिक, सांस्कृतिक, औद्योगिक, पर्यावरण, भाषा एवं संचार प्रणाली से सम्बद्ध विश्वव्यापी एकीकरण की प्रक्रिया है। इसे एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते तथा एक साथ कार्य करते हैं। वैश्वीकरण व्यवसाय में उभरती हुई प्रवृत्ति है। वैश्वीकरण स्थानीय एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोणों का उद्घाटन है जो एक दूसरे पर आश्रित होते हुए विश्व के व्यापक दृष्टिकोण के साथ समन्वय करना है। इसका जीवन के लगभग हर क्षेत्र पर प्रभाव पड़ता है। यह जीवन की गुणवत्ता में सुधार करके जीवन के स्तर को प्रभावित करता है। वैश्वीकरण के मुख्य रूप से दो उद्देश्य हैं।

1. विश्वसमुदाय का एकीकरण
2. वैश्विक पूंजीवाद को बढ़ावा देना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वैश्वीकरण के युग ने देश विदेश की सीमाओं को विधिवत् लांघकर लोगों को एक दूसरे से जुड़ने का बड़ा अवसर दिया है। सूचना एवं संचार तकनीक क्षेत्र में जिस तीव्रता से विकास हो रहा है उसने विश्व के लोगों के बीच सम्पर्क को पर्याप्त बढ़ा दिया है। इस प्रकार वैश्वीकरण वर्तमान समय की आवश्यकताओं का एक मुख्य विषय बन चुका है। जो विश्व के अधिकांश लोगों को किसी न किसी रूप में प्रभावित कर रहा है।

## वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक शिक्षा

इस विषय पर विचार करते समय दो तथ्यों पर विचार अपेक्षित है। एक तो आधुनिक विषयों की शिक्षा तथा आधुनिक शिक्षापद्धति।

## संगोष्ठी सौरभ

वैश्वीकरण का प्रभाव क्षेत्र व्यापक है, उसे प्रत्येक क्षेत्र व्यापार, राजनीति, खेल, पर्यटन, संस्कृति, चिकित्सा, अभियान्त्रिकी, सूचना प्रसारण एवं शिक्षा के अन्य क्षेत्रों की दृष्टि से भी मान्य किया गया है। वर्तमान वैश्वीकरण के युग में उच्चशिक्षा की विषयवस्तु अध्यापन, आवश्यकताएँ तथा अध्यापकीय दृष्टिकोण में परिवर्तन देखा जा सकता है। आज परम्परागत शिक्षणविधियों के स्थान पर नवीन विधियाँ द्वारा विद्यार्थी को स्व-अधिगम के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। आज व्याख्यान पद्धति के साथ साथ सेमिनार, वर्ग-विमर्श कार्यशाला ट्यूटोरियल आदि का शिक्षण में अधिक प्रयोग किया जा रहा है। विश्वविद्यालयों को किस तरह उच्चस्तरीय शिक्षा प्रदान करनी चाहिए इस पर भी ध्यान दिया गया है।

वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण उच्चशिक्षा के पाठ्यक्रम में भी बहुत परिवर्तन देखा जा सकता है। आज मानवीय विषयों की अपेक्षा विविध आयामी व्यावसायिक पाठ्यक्रमों पर अधिक बल दिया जा रहा है। इसके अन्तर्गत उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम में ऊर्जा संरक्षण, पर्यावरण, प्रदूषण एवं बचाव, जनसंख्या शिक्षा, रोगमुक्ति व रोगनियन्त्रण के उपाय, कौशल विकास, मानवाधिकार, कम्प्यूटर से लेकर अन्तरिक्ष विज्ञान तक, खनिजशास्त्र आदि आधुनिक अपेक्षित विषयों का समावेश पाठ्यक्रम में किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित विषयों को आधुनिक शिक्षा में सम्मिलित किया जाना चाहिए। मनोवैज्ञानिक-शिक्षा, व्यावहारिक शिक्षा, खेलकूद सम्बन्धी शिक्षा, आध्यात्मिक शिक्षा, योगशिक्षा एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित शिक्षा। जिस प्रकार दूसरे देशों के शिक्षाविद् भारतीय शिक्षा पर, उसकी पद्धति पर प्रभाव डाल रहे हैं, उसी प्रकार वैश्वीकरण के सिद्धान्त के आधार पर भारतीय शिक्षा एवं संस्कृति के मूल्यों पर आधारित आध्यात्मिक शिक्षा आदि का समावेश भी करवाने का प्रयास होना चाहिए, जिस प्रकार भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 27.09.2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में की गई अपील पर 21.06.2015 से प्रति वर्ष 21 जून को अन्तराष्ट्रिय योग दिवस मनाया जा रहा है, जिसे 11.12.2014 को संयुक्तराष्ट्र में 177 सदस्य देशों द्वारा प्रस्ताव के रूप में स्वीकार किया गया था। वैश्वीकरण की दृष्टि से इसे विश्व को दी गई भारत की पहल पर बहुत बड़ी प्रायोगिक शिक्षा कहा जा सकता है। इससे आगे बढ़कर यदि भारत योग को विश्वस्तरीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित करवाने का प्रयास करे तो यह मानवीय गुणों के विकास में बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। किन्तु हमें पहले अपने देश के सभी पाठ्यक्रमों में योगशिक्षा को सम्मिलित करना होगा, जिसका लाभ सूचना संप्रसारण साधनों इंटरनेट सैटेलाईट आदि द्वारा सबको दिया जा सकता है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने शिक्षा को सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों रूपों में प्रभावित किया है। सकारात्मक दृष्टिकोण से देखा जाए तो कह सकते हैं कि वैश्वीकरण से

शिक्षा की दृष्टि से साक्षरता में वृद्धि, शिक्षा में सूचना प्रौद्योगिकी व संचार तकनीकी के नए नए उपकरणों की सुलभता, शिक्षा से उत्पादकता में वृद्धि ज्ञान-विज्ञान का अप्रतिबन्धित आदान प्रदान, वैश्विक शिक्षा पद्धतियों को समझने की सुगमता, शिक्षा की प्राप्ति के लिए जागरूकता एवं तत्परता का विकास आदि अनेक गुणात्मक तथ्य हैं जो वैश्विक परिप्रेक्ष्य में शिक्षा पर सकारात्मक प्रभावों को परिलक्षित करते हैं। इसके नकारात्मक प्रभाव भी दिखाई देते हैं। वैश्वीकरण मूल रूप से एक आर्थिक प्रक्रिया है वर्तमान समय में बाजार की नीतियाँ सभी क्षेत्रों में लागू होती हैं। अतः शिक्षा के क्षेत्र में उसका प्रभाव दिखाई देता है जिससे देश में शिक्षा का व्यवसाय तीव्रता से फैल रहा है। वैश्वीकरण के नाम पर शिक्षा का व्यवसायीकरण एवं बाजारीकरण आज देश के समक्ष बड़ी चुनौती है, इसमें मुख्य कारण है कि शिक्षा का निजीकरण दिनों दिन बढ़ रहा है, जहाँ विकास आदि के नाम पर छात्रों से बहुत अधिक शुल्क लिया जाता है, जिससे देश के लगभग 80-85 प्रतिशत लोग आधुनिक शिक्षा पद्धतियों से शिक्षा प्राप्त करने से वंचित ही रह रहे हैं, क्योंकि वहाँ केवल आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बच्चे ही प्रवेश पा सकते हैं। इस प्रकार का शैक्षिक असन्तुलन आगे चलकर पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था के लिए भी भयावह स्थिति पैदा कर सकता है, अतः इस प्रकार की व्यवस्था हो जिससे सभी प्रतिभा-सम्पन्न बच्चे इसका लाभ उठा सकें। अर्थात् इसका संयत एवं सर्वहित में सन्तुलित व्यवहार किया जाता है तो वह समाज के लिए अधिक उपयोगी एवं लाभकारी सिद्ध हो सकता है। जिस प्रकार शिक्षा प्राप्त करना सबका अधिकार है उसी प्रकार आधुनिक शिक्षा प्राप्त करना भी सबका अधिकार होना चाहिए। इसके लिए सरकार व समाज को मिलकर कार्य करना होगा। इसके अतिरिक्त आज भी भारत में उच्चशिक्षा के क्षेत्रों में अपेक्षित गुणवत्तायुक्त शिक्षाव्यवस्था के अभाव के कारण बहुत से सम्पन्न घरों के बच्चे आधुनिक शिक्षा-प्राप्ति के लिए विदेशों में जाते हैं, जिससे देश का बहुत धन बाहर चला जाता है। इसे रोकने के लिए उच्च शिक्षा व्यवस्था को वैश्वीकरण के स्वीकार्य गुणवत्ता-मापदण्डों के परिप्रेक्ष्य में परिष्कृत करना होगा।

इस सम्बन्ध में ध्यातव्य वक्तव्य है कि वैश्विक परिप्रेक्ष्य में सबके साथ चलते हुए शिक्षकों को उचित संसाधन उपलब्ध करवाते हुए नवाचार के उपयुक्त प्रशिक्षण एवं निरन्तर सुव्यवस्थित अभ्यास-समर्थ कर दिया जाए तो भारत के विश्वविद्यालय भी गुणवत्ता-मूल्यांकन पद्धति से उच्चस्थान प्राप्त कर सकेंगे। जिससे शिक्षा के लिए भारतीय छात्रों को विदेश जाने की आवश्यकता नहीं होगी बल्कि पूर्वापेक्षा अधिक विदेशी छात्र भी भारत में उच्च अध्ययन के लिए आयेंगे। जिससे भारत की आर्थिक स्थिति और सुदृढ़ होगी।

जहाँ तक भारतीय भाषाओं में संस्कृत एवं हिन्दी का प्रश्न है ये दोनों वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही हैं ।

1. नासा के अनुसार संस्कृत, भूमि पर बोली जाने वाली सबसे स्पष्ट भाषा है ।
2. नासा के पास संस्कृत में ताडपत्रों पर लिखी हजारों पाण्डुलिपियाँ हैं जिन पर नासा अनुसन्धान कर रहा है ।
3. संस्कृत को कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर के लिए सबसे उपयोगी माना गया है ।
4. जर्मनी में बड़ी संख्या में संस्कृत भाषियों की मांग है । वहाँ के 14 विश्वविद्यालयों में संस्कृत की पढ़ाई की जाती है ।
5. लन्दन एवं आयरलैंड के कई स्कूलों में संस्कृत को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाता है ।
6. कम्प्यूटर द्वारा गणित के सवालों को हल करने वाली कलन विधियाँ (एल्गोरिथम्स) संस्कृत में बनी हैं, न कि अंग्रेजी में । संस्कृत के बारे में इस प्रकार की और भी कई वैज्ञानिक एवं भाषावैज्ञानिक विशेषताएँ विश्वस्तर मान्य की गई हैं, जिसका हमें गर्व होना चाहिए ।

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के बारे में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार हिन्दी से अंग्रेजी की तरफ संक्रमण की आन्धी चल रही है उसी तरह भारतीय भाषाओं और बोलियों से एक धारा हिन्दी की ओर भी आ रही है जिसका परिणाम यह है कि हिन्दी का सर्वमान्य रूप से देश की प्रमुख सम्पर्क भाषा बन जाना । जिस गति से देश में हिन्दी की प्रगति हो रही है उससे बहुत शीघ्र वह अंग्रेजी को पीछे छोड़ आगे बढ़ सकती है । यह सब हिन्दी के भाषिक सामर्थ्य, समृद्ध साहित्य, विविधता सरलता एवं लिपि के कारण हो सकता है । वैश्वीकरण के इस युग में हिन्दी को और अधिक सशक्त बनाने के लिए विश्व की दूसरी भाषाओं के साथ अनुवाद के माध्यम से दृढ़ता से जुड़ना होगा । विश्व में हिन्दी को सम्मानजनक स्थान दिलाने के साथ-साथ हमें भी उसे अपने देश में उचित स्थान देना होगा । विश्व के अनेक देशों के लोग संस्कृत की तरह हिन्दी को भी सीखना चाहते हैं और पढ़ रहे हैं । विश्व में आज हिन्दी की लोकप्रियता इतनी बढ़ गई है कि 40 से अधिक देशों के 600 से अधिक विश्वविद्यालयों एवं विद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है । इन देशों में प्रमुख हैं मारीशस, फिजी, श्रीलंका, ब्रिटेन, अमेरिका, वेस्टइण्डीज, गुयाना, फ्रांस, इटली, स्वीडन आस्ट्रीया, डेनमार्क, जर्मन, रोमानिया, बुल्गारिया नार्वे आदि जहाँ हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है ।

## संगोष्ठी सौरभ

इस प्रकार वैश्वीकरण की दृष्टि से हिन्दी विश्व में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाने में निरन्तर अग्रेसर है । अतः वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक शिक्षा के बारे में यही कहा जा सकता है कि किसी भी देश के लिए शिक्षा ऐसा क्षेत्र है जो देश के सर्वाङ्गीण विकास के क्रम को अधिक प्रभावित करता है ।

शिक्षा की दृष्टि से संवाद, परस्पर सहयोग विविध विषयों के ज्ञान-विज्ञान के लिए तथा समाज को नई नई चुनौतियों का सामना करने में सक्षम बनाने के लिए शिक्षण संस्थानों को वैश्विक मापदण्डों के योग्य बनाना समय की मांग है । अन्यथा इनके अभाव में कोई भी समाज वर्ग या देश स्वयं में कुछ कमी का अनुभव करेगा ।

सभी क्षेत्रों के विकास के लिए शिक्षा ही मुख्य माध्यम है जिसमें विद्यार्थी, अध्यापक, संसाधन, सरकारी व निजी प्रबन्धन एवं समाज की मुख्य भूमिका होती है । वैश्वीकरण के समय में इस बात की सावधानी आवश्यक है कि हम अपने देश की मूलभूत मान्यताओं, परम्पराओं, मूल्यों, आदर्शों, सिद्धान्तों एवं विचारधारा की रक्षा करते हुए विश्व में हो रहे शैक्षिक परिवर्तनों एवं परिष्कारों से जुड़कर अपने देश की परिस्थितियों के अनुरूप उनका लाभ उठाएँ तथा स्वयं नई पद्धतियों का सृजन कर उन्हें दूसरे देशों तक पहुँचाने का प्रयास करें जिससे वहाँ के लोग लाभ प्राप्त कर सकें । केवल अनुकरण ही पर्याप्त नहीं है आविष्कार भी आवश्यक है । वैश्वीकरण के कारण हमें राष्ट्रियकरण एवं स्वदेशीकरण की विचारधारा को नहीं छोड़ना है अन्यथा लाभ कम हानि अधिक होगी ।

अतः वैश्वीकरण के समय में आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में सरकार, शिक्षविदों एवं समाज को भेदभाव-विहीन दूरदर्शितापूर्ण नीतियाँ बनाकर वर्तमान की चुनौतियाँ का सामना व समाधान करते हुए उपलब्ध संसाधनों को बढ़ाते हुए मिलकर कार्य करना होगा तभी शिक्षा के क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि होकर देश सभी दृष्टियों से विकसित हो पाएगा, अर्थात् वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान आधुनिक शिक्षा अधिक सार्थक सिद्ध हो सकेगी ।

आचार्यचर

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान ( मा.वि. )

क.जे सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,

विद्याविहार, मुंबई ७७

★★★

## वैश्वीकरण और शारीरिक शिक्षा

### डॉ. ओम प्रकाश भड़ाना

संसार में ऐसे बहुत कम लोग हैं जिन्हें शिक्षा में रूचि न हो। शिक्षक, अभिभावक, शिक्षा प्रबन्धक और राजनीतिक शिक्षा सभी इसके बारे में बात करते हैं। प्राचीन समय से ही शिक्षा शब्द का प्रयोग होता चला आया है, कुछ प्राचीन दार्शनिकों के विचार इस प्रकार हैं। प्लेटो ने शिक्षा को एक प्रशिक्षण बताया जिससे बालकों की अच्छी आदतों के द्वारा नैतिक गुणों का विकास करना है। अरस्तु ने शिक्षा को स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण करना कहा है। स्वामी विवेकानन्द जी ने शिक्षा द्वारा चरित्र निर्माण, मस्तिष्क की वृद्धि जिससे बालक अपने पैरों पर खड़ा हो सके। प्रो. डमविल ने शिक्षा के अर्थ में उन सभी प्रभावों को बताया जो बालक पर जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रभावित करते हैं।

मनुष्य अपने कार्यों को एक योजना के अनुसार कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करता है। शिक्षा का उद्देश्य बालक को सक्षम बना कर उसे भावी जीवन के लिए तैयार करना है। शिक्षा के सामान्य उद्देश्य जिनको सभी लोग मानते हैं, निम्नलिखित हैं -

1. ज्ञान का उद्देश्य।
2. शारीरिक विकास का उद्देश्य।
3. चारित्रिक विकास का उद्देश्य।
4. सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य।

बालक के संपूर्ण विकास के लिए ये सभी उद्देश्य आवश्यक हैं किसी एक उद्देश्य को शिक्षा पूरा नहीं कर पाती है तो बालक के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास संभव नहीं है।

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा के उद्देश्यों पर जोर देते हुए कहा था कि किसी कार्य को कहना और उसे न करना हमारी आदत हो गई है, इसका मुख्य कारण हमारी शारीरिक दुर्बलता। अतः हमारे बालकों को सबसे पहले शारीरिक रूप से सक्षम होना चाहिए। अन्य उद्देश्यों का स्थान इसके बाद में आएगा। सामान्य रूप से सभी कालों में शारीरिक विकास को शिक्षा का आवश्यक अंग माना गया है। शिक्षा इस प्रकार हो जिससे बालक का शारीरिक गठन सुन्दर और सक्षम हो। प्राचीन काल में शारीरिक विकास पर काफी बल दिया जाता था। प्लेटो और रूसो ने अपनी शिक्षा योजनाओं में शारीरिक विकास पर बल दिया। बालकों के लिए शिक्षा पाठ्यक्रम में खेलकूद और व्यायाम का उचित स्थान होना चाहिए। क्योंकि स्वस्थ नागरिक ही किसी देश या नस्ल की सबसे बड़ी पूंजी होती है। आधुनिक चीन के निर्माता एवं नायक माओत्से तुंग ने 1917 में अपने देशवासियों को

शारीरिक शिक्षा एवं शारीरिक क्षमताओं पर एक संदेश दिया था । उन्होंने कहा कि - शारीरिक शिक्षा जीवन सुधारने में सहायक होती है । सदाचार और ज्ञान में यह शिक्षा के एक पूरक कार्य करती है । इसके अतिरिक्त सद्गुण और ज्ञान शरीर में वास करते हैं । शरीर के अभाव में न तो सदाचार सम्भव है और न ही ज्ञान । यदि व्यक्ति अपने शरीर को स्वस्थ रखने का प्रयास करता है तो अन्य बातें स्वतः ही संभव हो जाएगी । शारीरिक उन्नति के लिए शारीरिक शिक्षा से प्रभावशाली कोई अन्य साधन नहीं है । शरीर के स्वस्थ होने से व्यक्ति तेज गति से ज्ञान, नैतिकता, सामाजिकता की ओर बढ़ता है जिससे उसे भावी जीवन में अनेक लाभ प्राप्त होते हैं । आधुनिक समय में शारीरिक शिक्षा सम्पूर्ण शिक्षा प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है । इस विचारधारा का समर्थन शारीरिक शिक्षा के विद्वानों जिनमें - हैरी क्रो, बक, कलार्क, हैदरिंग्टन, चार्ल्स वूस्ट और एडवर्ड हिचकाक प्रमुख हैं । अमेरिकी स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा और मनोरंजन महासंघ ने शारीरिक शिक्षा के बारे में बताया कि शारीरिक शिक्षा एक ऐसी शारीरिक गतिविधियों द्वारा सम्पन्न होने वाली शिक्षा है, जिसका चयन तथा संचालन मानव वृद्धि, विकास तथा व्यवहार मूल्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है । भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग ने 1986 में नई शिक्षा नीति लागू की थी जिसमें शारीरिक शिक्षा को विशेष स्थान दिया गया था । बालक के सम्पूर्ण विकास जिसके अन्तर्गत शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक एवं सांस्कृतिक विकास है उसे पूरा करने के लिए शारीरिक शिक्षा सम्पूर्ण शिक्षा के पूरक के रूप में कार्य करती है ।

आधुनिक समय में पूरा विश्व विज्ञान के आविष्कारों जैसे संचार, यातायात और औद्योगिक क्रान्ति के कारण सुख सुविधाओं के साधन जुटाने में लगा है । इसके साथ ही विभिन्न देशों की आपसी स्पर्धाओं से पूरा विश्व में कई गंभीर समस्याओं का सामना मानव जाति को करना पड़ रहा है । आजकल पूरे विश्व के साथ ही हमारे देश में भी स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्याएँ हैं । इन समस्याओं के कारण पीठ दर्द, मोटापा, रक्तचाप, मधुमेह और हार्ट अटैक (दिल का दौरा) होने से लोगों की असमय मौत हो रही है । आधुनिक जीवन शैली की वजह से मनुष्य चिन्ताग्रस्त रहता है । इस प्रकार की जीवन शैली होने से दिल की बीमारियाँ और मधुमेह हमारे लिए चुनौती बनी हुई है । हमारे स्वास्थ्य के विभिन्न तत्त्व जैसे मांसपेशीय शक्ति एवं क्षमता, हृदयनाड़ी क्षमता, शारीरिक चपलता एवं लचीलापन और मोटापा (वसा का प्रतिशत) में असन्तुलन पैदा हो गया है । हमारी शारीरिक क्षमताओं का निरन्तर ह्रास हो रहा है, जिससे हमारे शारीरिक अंग, ठीक प्रकार से कार्य करने में असक्षम हो रहे हैं । साधारण शब्दों में शारीरिक क्षमता का अर्थ है आप बिना थके अपने रोजमर्रा के कार्य

स्पर्ति पूर्वक करें और खाली समय का सही प्रकार प्रयोग करें और कोई आकस्मात् परेशानी आए तो आप उसका भी सफलतापूर्वक सामना कर सकें ।

आधुनिक जीवन शैली के कारण हम थकान, चिन्ता एवं कई प्रकार के रोगों का सामना करते हैं तथा डॉक्टरों का सहारा लेते हैं । लेकिन आजकल इंग्लैंड जैसे विकसित देश में डॉक्टर बीमार लोगों को दवाई कम और व्यायाम व सैर करने के नुस्खे ज्यादा लिख रहे हैं । 23 फरवरी, 2018 को दैनिक भास्कर में यूके के डॉक्टरों के इस बारे में खबर पढ़ी के जो इस प्रकार है – इंग्लैंड में लंदन और उसके आसपास के शहरों में डॉक्टर परंपरागत नुस्खों की बजाय दिनचर्या में बदलाव करने के सुझाव दे रहे हैं, वे उन्हें सैर करना, व्यायाम करना, पैदल चलने तथा प्राकृतिक उपचारों का परामर्श दे रहे हैं ।

इंग्लैंड की सोशल प्री-स्क्राइविंग नेटवर्क ऑफ हेल्थ वर्क्स एण्ड अकेडेमिक्स की सह-अध्यक्ष मैरी पाली कहती है कि डायबिटीज जैसी बिमारी में शारीरिक व्यायाम ज्यादा कारगर हो रहा है, मरीजों को अपनी जीवनशैली में बदलाव लाने को कहा जा रहा है । लोगों की मानसिक सेहत के लिए व्यायाम एवं शारीरिक गतिविधियों पर जोर दिया जा रहा है । वहाँ पर इस प्रकार के इलाज के कारण शोधकर्ताओं ने अध्ययन में पाया कि जिन मरीजों ने 12 सप्ताह के इस प्रकार के कार्यक्रम में हिस्सा लिया वे पहले से ज्यादा खुशनुमा और तनाव रहित पाए गए । हमारे देश में भी डॉक्टर लोग रोगियों को दवाओं के साथ पैदल चलना, साईकल चलाना, तैरना आदि व्यायाम करने के साथ सक्रिय जीवन शैली अपनाने का परामर्श दे रहे हैं ।

आधुनिक काल में विश्व की ज्वलन्त समस्याओं में विभिन्न देशों में प्रभुत्व की स्थापना हेतु आपसी तनाव होना, जिससे विश्व शान्ति को गंभीर खतरा पैदा हो रहा है, विभिन्न देश परमाणु हथियारों का उत्पादन कर रहे हैं । खेलों और शारीरिक शिक्षा की सहायता से इन तनावों को कम किया जा रहा है । खेल विश्व बंधुता का संदेश दे रहे हैं, ओलम्पिक और विश्व स्तर की क्रीडा प्रतियोगिता कट्टर शत्रुओं को भी एक साथ लाने में सफल रहे हैं । खेलों द्वारा विश्व-शान्ति और सह अस्तित्व का पाठ पढ़ाया जा रहा है ।

आधुनिक समय की एक अन्य गंभीर समस्या यह है कि आधी आबादी का उनके अधिकारों से वंचित करना । यानि लिंगभेद और नस्लभेद जैसी बुराईयों का भी खेलों और शारीरिक शिक्षा में ही निदान संभव है । विश्वखेलों में किसी भी तरह के भेद को मान्यता नहीं दी जाती है । पूरी दुनिया में लोग शारीरिक अभ्यास की तरफ आकृष्ट हो रहे हैं क्योंकि इन शारीरिक क्रियाओं द्वारा निम्न लाभ प्राप्त हो रहे हैं । लोग खेलों की प्रतिस्पर्धाओं में भाग लेने, स्वस्थ रहने, शारीरिक भार एवं मोटापे को नियंत्रण में रखने, सामाजिक और

## संगोष्ठी सौरभ

भावात्मक रूप से स्थिर, मानसिक तनावों को दूर करने और अपने जीवन का पूरा आनन्द लेने के साथ सामान्य गामक क्षमताओं का विकास करने तथा अपने विवाहित जीवन को सफल बनाने हेतु शारीरिक क्रियाओं का अभ्यास कर रहे हैं ।

शारीरिक स्वास्थ्य, सामाजिक प्रवीणता और नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य सामान्यतः शारीरिक शिक्षा के मुख्य उद्देश्य माने जाते हैं । जिससे व्यक्ति का उच्च स्तर का स्वास्थ्य, सुयोग्य नागरिक जिससे दूसरों के प्रति सम्मान, स्वयं क परिवेश और भूमण्डलीय वातावरण के बारे में समझ और सौन्दर्यबोधोत्पन्न मूल्यों को आत्मसात करने के योग्य बनता है ।

### सन्दर्भ ग्रन्थ

1. शारीरिक शिक्षा के आधार - चार्ल्स ए. बुचर, 1972 ।
2. मनुष्य तथा कार्यशीलता - शारीरिक शिक्षा के सिद्धान्त - हैराल्ड एम्. वैरों, 1999 ।
3. शारीरिक शिक्षा तथा मनोरंजन की एक राष्ट्रीय योजना - 1956, शिक्षामन्त्रालय, भारत सरकार ।
4. शारीरिक शिक्षा - एक समकालीन प्रस्तावना - एंजला लम्पकिन, 1986 ।
5. दैनिक भास्कर समाचार पत्र - 23 फरवरी, 2018 ।

आचार्य, शारीरिक शिक्षा,  
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,  
जयपुर ।



## राष्ट्र के निर्माण में ज्योतिषीय योगानुशीलन

प्रो. भारतभूषण मिश्र

भारतीय जन मानस की सोच सदैव से समग्रवादी दृष्टिकोण वाली रही है। इसी कारण हम 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उद्घोष भी करते हैं। भारतीय धर्म दर्शन, अध्यात्म, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, वैदिक गणित, ज्योतिष आदि के कारण ही हमारी समृद्धि लोक विश्रुत है। मित्रों जो संस्कृति या समाज जितना विकसित होता है उसमें कभी-कभी प्रमाद उसके हास का कारण बनता है, इसलिए हमें अपनी संस्कृति व शास्त्र की रक्षा के लिए निरन्तर संघर्ष करना चाहिए तभी हम संस्कृति की उन्नति में सहयोगी बने रहने के अधिकारी होंगे। संयम, सदाचार, सद्भावना, संयुक्त परिवार, सोलह संस्कार आदि भारतीय गौरवशाली परम्परा विश्व में श्रेष्ठतम सार्वभौमिक वैज्ञानिक संस्कृति के रूप में विख्यात रही है। 'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा'<sup>1</sup> यह यजुर्वेद का सन्दर्भ हमारी प्राचीन संस्कृति का बोधक है। विभिन्न देश भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, नेपाल, वर्मा, बांग्लादेश, मारीशस, श्रीलंका सहित एशिया महाद्वीप में बसे सभी लोगों के पूर्वज एवं उनकी संस्कृति, सभ्यता व दर्शन एक जैसा ही था, जिसके कारण भारत चक्रवर्ती साम्राज्य के रूप में दिखाई देता था। मध्यकाल में भौगोलिक व सांस्कृतिक विभाजन हुआ और लोग अनेक सम्प्रदायों एवं मजहबों में बंट कर हिन्दू, बौद्ध, जैन, सिक्ख, मुस्लिम आदि बनें, किन्तु तात्त्विक दृष्टि से देखे तो हमारे खून में भिन्नता नहीं होने के कारण हम कह सकते हैं कि हमारे पूर्वज एक थे। यही कारण है कि ज्योतिषशास्त्र में वर्णित सोलह संस्कारों में प्रथम गर्भाधान संस्कार समग्र रूप में अपनायी जाने वाली विधा एक जैसी ही होती है। चूँकि गर्भधारण के बाद प्रसव कब होगा इसको जानने के लिए आज समाज मशीनी जाँच के चक्कर में कितना सारा धन खर्च करता है, लेकिन हम थोड़ी सतर्कता बरतें और आधान के समय को जानकर ज्योतिषीय सलाह लें तो आर्थिक कष्ट से बच सकते हैं। जैसे उदाहरण के रूप में वृहद्देवज्ञरंजनकार लिखते हैं कि आधान के समय चन्द्रमा स्थिर राशि में हो तो 292 दिन में, चर राशि में चन्द्रमा हो तो 287 दिन में तथा द्विस्वभाव राशि में हो तो 281 दिन में प्रसव होता है। यथा -

आधानं यदि दृश्यते स्थिरगते चण्डीशचूड़ामणौ,

नारीणां प्रसवस्तदा खलु भवेद्युग्मांकपक्षे २९२ दिनैः।

सप्ताशीत्यधिकैश्च पक्षसहितै २८७ स्तस्मिंश्चरक्षेत्रे,

चन्द्राष्टाश्वि २८१ दिनै रसातलभुजै २७६ वा द्विस्वभावे विधौ ॥<sup>२</sup>

जन्म के अनन्तर बनने वाली जन्मकुण्डली को देख कर बच्चे के भविष्य तथा उसके द्वारा किये जाने वाले कार्य का विश्लेषण ज्योतिषशास्त्र के द्वारा ही किया जा सकता है, कि यह बालक समाज के किस क्षेत्र में जायेगा और किस तरह से लोकोपयोगी बनेगा। मनुष्य एक जैसा शारीरिक अवयव स सम्पन्न होने के बावजूद भी अनेकों भिन्नताएँ उसमें

## संगोष्ठी सौरभ

दिखाई पड़ती हैं। चूँकि ग्रहस्थिति को हम कारण मानते हैं, क्योंकि व्यक्ति से ही राष्ट्र निर्माण की स्थिति बनती है और मनुष्य के ग्रह प्रभाव के कारण ही उसको (राष्ट्र को) समृद्ध बनाने में वह सफल भी हो पाता है। प्रथम दृष्ट्या दैवज्ञ विचार करते हैं कि कोई व्यक्ति समाज के लिए क्या करेगा? इसको देखने के लिए ज्योतिषशास्त्र उस व्यक्ति के लग्नभाव को देखने का निर्देश करता है, क्योंकि लग्नभाव पुष्ट, बली होगा तो ही व्यक्ति शारीरिक रूप से कोई भी कार्य करने में समर्थ होगा, तथा लग्नभाव बलहीन, पीड़ित हो तो वह व्यक्ति स्वयं के लिए कुछ कर सकने में समर्थ नहीं हो पाता, ऐसा व्यक्ति राष्ट्र के लिए अथवा समाज के लिए क्या कर सकता है। आचार्य गणेशदैवज्ञ प्रतिपादित श्लोकों से स्पष्ट भी हो जाता है। यथा -

देहाधीशः स पापो व्ययरिपुमृतिगश्चेत्तदा देह सौख्यं,  
न स्याज्जन्तोर्निजर्क्षे व्ययरिपुमृतिपस्तत्फलस्यैव कर्ता ।  
मूर्तौ चेत् क्रूरखेटस्तदनु तनुपत्तिः स्वीयवीर्येण हीनो,  
नानातङ्काकुलः स्याद् व्रजति हि मनुजो व्याधिमाधिप्रकोपम् ॥<sup>४</sup>  
अङ्गाधीशः स्वगेहे बुधगुरुकविभिः संयुतः केन्द्रगो वा,  
स्वीये तुङ्गे स्वमित्रे यदि शुभभवने वीक्षितः सत्वरूपः ।  
स्यान्नूनं पुण्यशीलः सकलजनमतः सर्वसंपन्निधानं,  
ज्ञानी मन्त्री च भूपः सुरुचिरनयनो मानवो मानवानाम् ॥<sup>५</sup>

क्योंकि जातक के पुष्ट होने की स्थिति देखकर ही उस व्यक्ति या किसी व्यक्ति को राष्ट्र निर्माण के लिए उपदेशक, सलाहकार (मन्त्री), राजकार्य का निर्वहण करने और मनुष्यों को अभिप्रेरित करके श्रेष्ठमानव निर्माण की दिशा को अग्रेसित करने वाला अथवा सहायक माना जा सकता है, क्योंकि व्यक्ति से समाज और समाज से राष्ट्र निर्माण की स्थिति बनती है। ज्योतिष कालज्ञापक शास्त्र माना जाता है और काल का अर्थ होता है समय, इसलिए कौन सा समय अनुकूल होगा, इसका विश्लेषण करके किया जाने वाला कार्यसम्पादन समाज और राष्ट्र के लिए हितकर होगा। लगता है यही कारण होगा कि जन्म से पूर्व भी ज्योतिष की उपयोगिता राष्ट्र के निर्माणार्थ अच्छे योग्य नागरिक अन्वेषण की दिशा में प्रयास करत हुए आधान लग्न का निर्धारण दैवज्ञों द्वारा ग्रहचार एवं अनुकूल परिस्थिति के मेल जोल से यशस्वी सन्तति उत्पन्न करने के लिए मुहूर्त का चयन कर आचार्य के बताएँ निर्देश के अनुसार आधान यज्ञ का अनुष्ठान होता था और उसके प्रतिफल रूप में उत्पन्न हुए जातक समाजिक सुरक्षा और राष्ट्रनिर्माण में अपनी महती भूमिका प्रदर्शित करते थे। उत्तम संस्कारवान् पुत्र की कामना से पुत्रेष्टियज्ञ का विधान हमारे शास्त्रों में विहित है। मित्रों

समाज में आज की स्थिति कुछ भयावह सी लग रही है, क्योंकि मनुष्य का मनुष्य से लगाव न होकर कुत्सित भावना का प्रायः दशन हो रहा है। परिवार के सदस्यों में वह आदर का भाव नहीं रहा जो पहले था। क्रमशः हास का अनुभव सभी कर सकते हैं। इसमें कारण यह है कि हमारा समाज ज्योतिष की सलाह से परे होता जा रहा है। यहाँ एक बात अवश्य कहना चाहूँगा कि ज्योतिष का भ्रामक प्रचार खूब-जोरा से चल रहा है, या चलाया जा रहा है उन लोगों के द्वारा जिन्हें ज्योतिष के आरम्भिक ज्ञान (बेसिक) का भी बोध नहीं है, उनकी दुकानें चल रही हैं, और वे लोग मीडिया के माध्यम से अपना रोजगार चला रहे हैं, लेकिन वे लोग जिन्होंने परम्परा से ज्योतिष का अध्ययन किया है और पठन-पाठन में लगे हैं, उन्हें कम लोग जानते हैं, तथा उन्हें मीडिया से भी कोई लेना देना नहीं। मित्रों ज्योतिष एक अत्यन्त गूढ़ और प्रभावकारी शास्त्र है जिसके लिए अधिकारी अन्वेषक विद्वान् या अध्येता कौन होगा इसे आप सभी आचार्य वराहमिहिर द्वारा रचितग्रन्थ बृहत्संहिता के सांवत्सरसूत्राध्याय में देख सकते हैं। इतना ही नहीं महर्षि गर्ग का उल्लेख भी अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत होता है समाज के लिए। यथा -

**कृत्स्नाङ्गोपाङ्गकुशलं होरागणितनैष्ठिकम् ।**

**यो न पूजयते राजा स नाशमुपगच्छति ॥**

**अधिकृत्य ग्रहर्क्षादि जगतो येन निश्चयः ।**

**तदङ्गमुत्तमं विन्द्यादुपाङ्गं शेष मुच्यते ॥**

**नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता ।**

**चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते ॥<sup>6</sup>**

कहने का आशय यह है कि सही मायने में जो ज्योतिषशास्त्र के अध्ययनाध्यापन में रुचि रखने वाला होगा वह निश्चित संध्यावन्दन करने वाला और देवाराधन प्रिय होगा, तभी उसकी बुद्धि स्थिर और स्वस्थ होगी। जिसके कारण समाज की भलाई और उन्नति के लिए अपने शास्त्रसाधना के अनुसार अपना उपदेश देगा और उसके बताएँ अनुरूप कार्य करने वाला मनुष्य समाज और राष्ट्र की उन्नति हो, इस भावना से कार्य सम्पादित करेगा, ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन में रुचि नहीं लेने और बाहर के लोगों द्वारा इसका अध्ययन कर प्रचार-प्रसार करने से कुछ विषयों के प्रति भ्रम भी फैला है कि यह शास्त्र विदेशी लोगों के द्वारा पल्लवित है, जबकि यह पूर्णतया निराधार कहा जा सकता है, क्योंकि ज्योतिष वेदाङ्ग है।<sup>7</sup> इसे वैदेशिक भी मानते हैं। तो कैसे कोई कह सकता है कि गुरुत्वाकर्षण अथवा शून्य कहीं बाहर से आया है। हमारा अध्ययन के प्रति रुचि कम होना कारण हो सकता है। हमारा वेद जिसे अपौरुषेय की संज्ञा प्राप्त है उसमें सबकुछ है, हम सभी अध्ययन करें, तो

इसे जान सकते हैं । और इस प्रकार के उत्तम ज्ञान के अध्ययन और अवबोध से जहाँ इस ज्योतिष विद्या का विकास होगा ही, समाज और राष्ट्र निर्माण में इस शास्त्र की भूमिका भी प्रतिष्ठापित होगी । मित्रों पाँचवी शताब्दी में पृथ्वी के आकार और गति का उल्लेख हुआ था, लेकिन विश्वास कालान्तर में हुआ । उसी प्रकार ग्रहण के विषय की महाभारत में भी चर्चा मिलती है, जिससे भारतीय ज्योतिष शास्त्र की प्रामाणिकता स्पष्ट होती है । मित्रों आज की परिस्थिति में भी ज्योतिष के महत्त्व को प्रमाणित किया जा सकता है, लेकिन सुविधा पूर्व की भाँति हो तो दैवज्ञ निरन्तर शास्त्रसाधना के द्वारा समाज को कुछ नया देने में समर्थ हो सकता है । निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि ज्योतिषशास्त्र का ठीक प्रकार से अध्ययन और अध्यापन हो तभी ऐसे उत्कृष्टशास्त्र के द्वारा समाज की भलाई के विषय में सोचा जा सकता है, तथा समाज जब जाग्रत और समृद्ध होगा तो ही राष्ट्र की भलाई हो सकेगी । आज समय की भी मांग है कि हम सभीनिजस्वार्थ, संकीर्णता और रूढ़ीवादी दुराग्रहों को छोड़कर मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं को आधार मानकर धर्मादि की व्याख्या करें । ज्योतिष और धर्म का कुछ ऐसा स्वरूप बनाया जाना चाहिए, जिसे अपनाने में किसी को कष्ट न हो, क्योंकि हमारा ज्योतिष इतना उदार है, जिसकी विशेषता का गुणगान निम्न श्लोक के द्वारा प्रमाणित भी हो जाता है। यथा -

प्लेच्छाहि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम् ।

ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्विजः॥

यद्दानवेन्द्राय मयाय सूर्यः शास्त्रं ददौ सम्प्रणताय पूर्वम् ।

विष्णोर्वसिष्ठश्च महर्षिमुख्यो ज्ञानामृतं यत्परमाससाद ॥

पराशरश्चाप्यधिगम्य सोमाद् गुह्यं सुराणां परमाद्भुतं यत् ।

प्रकाशयाञ्चक्रुरनुक्रमेण महर्षि सन्तो यवनेषु तन्ते ॥<sup>१</sup>

इस प्रकार आचार्य वराहमिहिर द्वारा प्रतिपादित उद्धरणों के आलोक में कह सकते हैं कि अच्छे दैवज्ञ से राष्ट्र और समाज की भलाई सम्भव है । यथा -

न तथेच्छति भूपते पिता जननी वा स्वजनोऽथवा सुहृत् ।

स्वयशोऽभिविबुद्धये यथा हितमाप्तः सबलस्य दैववित् ॥<sup>२</sup>

### सन्दर्भ सूची

1. पंचतन्त्र - 5.38
2. यजुर्वेद - 7-14
3. बृहदैवज्ञरंजन - पृष्ठ 4, श्लोक 18, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन वारणसी ।

## संगोष्ठी सौरभ

---

4. जातकार्लंकार श्री गणेश दैवज्ञ विरचित ।
5. भावाध्याय - पृ. 10-12, श्लोक 2-3, प्रकाशक-कृष्णदास अकादमी वाराणसी।
6. सांवत्सर सूत्राध्याय - पृष्ठ 4, अध्याय 2, प्रकाशक - चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी ।
7. बृहत्संहिता - गर्गवचन - सांवत्सरसूत्राध्याय, पृष्ठ 13, श्लोक 27, प्रकाशक - चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी।
8. बृहत्संहिता सांवत्सर सूत्राध्याय - पृष्ठ 14, श्लोक 30, प्रकाशक - चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी ।
9. बृहत्संहिता सांवत्सर सूत्राध्याय - पृष्ठ 16, श्लोक 39, प्रकाशक - चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी ।

आचार्य तथा अध्यक्ष ( ज्योतिष विभाग )

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान,

क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ

विद्याविहार, मुम्बई



## PATIENCE @ PINNACLE

✍ Prof. S V R Murthy

Humans always find short of Patience and perseverance. It is a rare case when one shows such kind of patience and perseverance and that too displayed in his poems, really a wonderful thing for the rest of the humanity to emulate. The whole gamut of our life will fall down when we lack in such a human quality, which is a Divine Gift inherited by birth. In this context, the above title will be proved apt when we go through the following analysis of two sonnets of John Milton: "On His Twenty-Third Birthday" and "On His Blindness".

John Milton is the only poet to boast of having the only Epic Poem, "Paradise Lost" in English Literature credited in his name. He was born on 9<sup>th</sup> December, 1608 and passed away on 8<sup>th</sup> November, 1674. He went to St. Paul's School and later studied at Christ's College. He was so fair that he was called as Lady of the Christ College. He lived through the turbulent times of London due to Civil War. He supported the rebel leader Oliver Cromwell. He even went on to become Secretary to the Council of State. But with the restoration of the Royalty to the English throne, he was even imprisoned for a brief period during the last phase of his life. He became totally blind in 1652. However, he published his epic poem, "Paradise Lost" in 1667. Four years later, he wrote "Paradise Regained". The last work he published was "Samson Agonistes". Indeed it was a great effort and a rare feat to write such a great epic, "Paradise Lost", when he lost both his eyes.

The patience and perseverance he showed in God is reflected in his sonnets like, "On His Twenty-Third Birthday" and "On His Blindness". He described Time as 'subtle thief' who stole his twenty three years without his knowledge. This happens in everyone's life. Just think about how we have spent our previous years, months, weeks and days! We will be astonished to know that the time is really fleeting. Milton wondered that his 'semblance' would deceive the truth of his having less of 'inward ripeness'. He lamented that the inward ripeness or maturity did not match his physical appearance. However, he showed optimism that he would get exactly what the Lord Almighty intended to award him in his life. Nothing more or nothing less but in the 'strictest measure' he would gain as the Time and the Will of Heaven would lead him towards his destination.

So Milton realized that God would give him what he was destined to get. He felt, because, everything would be alright in his 'great Task-Master's eye'. What a kind of patience and perseverance shown by Milton! When we fail to achieve something which is rightfully ours, we complain and even blame the Lord for his partiality. Our agony increases when we compare with others who though don't deserve to get still have been enjoying that something since long. We blame ourselves. We blame the setup of the society or the institution. We blame our luck and fortune. We blame the partiality of the authorities. Indeed we blame all including God. Sometimes we get angry over the Lord just because we haven't got

something whether it is a job or promotion or status or wealth or fortune in our life. Here we have to take cue from Milton how patience paves the way for triumph and personal glory. We have to learn to wait for our turn whether it comes sooner or later. This idea of Milton automatically flows into his other sonnet, "On His Blindness".

Milton knew that he had talent which would be hidden only by death. He felt lucky to spend at least half of his life in light. He would prepare himself mentally to spend the rest of his life in darkness. He wanted to present his true account of his life to God. He fondly wanted to ask Him how He would 'exact day-labour, light denied?' But, his 'patience', prevented his murmur. It answered his question by saying that 'God doth not need either man's work or his gifts. His duty was to carry on the orders of the Lord. According to Milton, he 'who best bear his mild yoke, they serve him best'. Because, His 'state is kingly' and thousands are at His 'bidding speed'. Milton noted that some people were posted 'o'er land and ocean without rest'. He said that 'they also serve who only stand and wait'.

Therefore, God knows everything. Whatever we deserve will get at the destined Time only. The measurement is the 'strictest even' – nothing less or nothing more. But, we have to be patient to wait for our turn. It may be sooner or later. God is our Father and He knows what to give and when to give us. So, the example of Milton's patience and perseverance at its pinnacle will teach us to wait for our turn patiently. Not only that, we can become an example for later generations to follow just as we have followed the example of Milton! It can save us from falling into the trap of sin. Ultimately, it gives us the soulful happiness which is the divine bliss we can humbly have!

**HOD – Modern Subjects  
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)  
Guruvayoor Campus  
Puranattukara. Thrissur, Kerala.**



# वैश्विक हिन्दी कविता और प्रवासी मन

डॉ. सतीश पाण्डेय

हिन्दी की वैश्विकता का प्रबल प्रमाण इसका प्रवासी-साहित्य भी है। यह उन लोगों द्वारा रचा गया है जो अलग-अलग कारणों से भारत से दूर रहकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध करते रहे हैं। इन प्रवासी भारतीयों में एक वर्ग तो उन प्रवासियों का है जिनके पूर्वज उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अंग्रेज शासकों द्वारा 'गिरमिटिया' मजदूर के रूप में ले जाकर मॉरिशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गुयाना आदि उपनिवेशों में बसाये गए। इन लोगों ने अपनी गरीबी और विवशता के कारण कल्पनातीत यातनाएँ झेलकर भी अपनी सांस्कृतिक विरासत और अपनी भाषा-बोली को बचाये रखा। दूसरे प्रवासी वे लोग हैं जो स्वेच्छा से विकसित देशों में रहने लगे। इनमें से अधिकांश लोग उच्च-शिक्षा प्राप्त 'प्रोफेशनल्स' या सम्पन्न व्यवसायी हैं। इन लोगों ने स्वयं को स्थापित कर लिया है। इन लोगों में अपने देश से कटने की पीड़ा और विवशता तो है लेकिन जीवन के दश की टीस जो गिरमिटिया मजदूरों और उनकी बाद की पीढ़ी में दिखायी देती है, वह नदारद है। इस वर्ग में पुरानी यादें हैं, जमीन से कटने की छटपटाहट है और सांस्कृतिक द्वंद्व है जो भारतीय संस्कारों और पश्चिम के समाज और प्रवासी भारतीय चाहे जिस भी कारण से गया हो, भिन्न समाज और संस्कृति के बीच रहते हुए वह न जाने कितनी सांस्कृतिक विसंगतियों से रूबरू हुआ होगा। न जाने कितने 'कल्चरल शॉक' सहे होंगे। और फिर उस भिन्न दुनिया के लोगों के साथ जीते हुए भी अपनी संस्कृति और अपनी भाषा-बोली को बचाये रखने की चुनौती स्वीकार की होगी। निश्चित रूप में उसे 'बनवास की छटपटाहट' और 'सांस्कृतिक द्वंद्व' का अनुभव तो होगा ही। प्रवासी कवियों - साहित्यकारों की रचनाओं में यह छटपटाहट और द्वंद्व साफ दिखाई देता है।

प्रवासी रचनाकारों के मन में भारत की जो स्मृतियाँ बसी हैं, उनकी कविताओं में भी बार-बार मुखरित हुई हैं। शकुंतला बहादुर अमेरिका में रहते हुए भी सावन की रिमझिम, तीज और राखी को याद करती है। तीज-त्योहार ही नहीं, लडना-झगड़ना और रूठना-मनाना भी वे नहीं भूल पातीं -

सुदूर सिंधु पार से, अपनों का अपनापन / लगता है मुझे बार-बार बुलाता है।

हिल-मिल कर बैठना और वो हँसना-हँसाना

सचमुच ही मुझको, सब बहुत याद आता है ।

वह लड़ना झगड़ना और रूठना-मनाना भी ।

मुझको अब बहुत ही, प्यारा सा लगता है । (सृजन संदर्भ, प्रवासी विशेषांक, 243)

प्रवासी अपने साथ जो सुधियाँ लेकर जाते हैं, उसमें जीवन की घटनाएँ मात्र नहीं होती बल्कि बकौल मोहन राणा एक महाद्वीप से दूसरे तक हो जाते / अपनी भाषा / ले जाते आम और पीपल का गीत / ले जाते कोई ग्रीष्म कोई दोपहर / पूस का पाला / अपने साथ / ले जाते गरी साथ । बांध लेते अजवाइन का पराठा भी यात्रा के लिए (वही, पृ. 45) अपनी भाषा और संस्कृति से जुड़ी ये तमाम यादें प्रवासी रचनाकारों को यहाँ की ज़मीन से जोड़े रखती हैं लेकिन यह भी सच है कि समय के साथ सब कुछ बदलता रहता है । इसलिए कई बार देश का जो बिंब उनके मन में बसा होता है, उसके प्रति शंका भी उपजती है । मोहन राणा इसी कारण लिखते हैं 'अपनी नब्ज़ पकड़े मैं देश खाजता हूँ नक्शों में / धूप की छाया से दिशा पता करते बादलों के अंतरालों में / पर मुझे शंकाएँ ही मिली हैं अब तक ।' (वही, पृ. 45) सृजन संदर्भ, प्रवासी विशेषांक ।

प्रवासी मन जिन सपनों को साकार करने के लिए विदेशों में जाता है, वे भी धीरे-धीरे बेमानी लगने लगते हैं और फिर वहाँ की जीवन शैली एक दूसरे की कैद प्रतीत होने लगती है । सुषम बेदी की कविता 'प्रवासी का एक खत' इस पीड़ा को बड़ी शिद्दत के साथ अभिव्यक्ति देती है । भारतीय समाज के जिन बंधनों से मुक्ति की छटपटाहट में विदेश जाते हैं, उनसे तो मुक्ति मिल जाती है किन्तु 'हवा की तरह तूफान' या 'सुबह की नींद को दुलराने वाले मंद समीर' बनने की आजादी अनुभव करती कवयित्री को लगता है कि 'जिन दिशाओं की खोज में आये थे, उन्हें टटोल लिया ।' जिन चुनौतियों ने भड़काया था और अपनी जमीन से हटाया था, उनका होना भी अब उसे बेमानी लगने लगा है । लेकिन वह नयी विदेशी जमीन कुछ भिन्न एहसास कराती है । इस आजादी की एक अलग जकड़न है -

बस नहीं भूले तो यह अहसास/कि जैसे बेदीवार जेल में बंद है/मन का पाखी

एक रेशमी-सी कैद/चाही/और अनचाही/कि आज ये/कल वो की बंदिश

लालच/फिर बच्चे/वे भी तो यहीं के हो गए/और यह सब न हो/तो

करेंगे भी क्या ?/अब उनके बिना जीना भी नहीं आता । (वही, पृ. 47)

प्रवासी रचनाकार विदेशी जमीन और वहाँ की प्रकृति के चित्र उकरते हुए भी भारतीय जीवन शैली से शक्ति और सहायता ग्रहण करते हैं । इसीलिए ओस्लो की आकरे नदी पर कविता लिखते हुए सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक' की बतखों की तैरती कतारें

देखकर गोमती तट पर फूल भरे दोनों पर जले दीपों की याद आ जाती है । आकर नदी के बहाने 'बेरोजगारों का दर्द' बयान करती कविता में कवि नदी को पूरी व्यवस्था का प्रतीक बना देता है जिसे शिक्षित बेरोजगारों का दर्द नहीं पता होता । इस दर्द को व्यक्त करते हुए कवि भारतीय जीवन की स्मृतियों के बिंब का ही हवाला देता है -

तुमने देखा होगा । बर्फीले जल में बतखों को तैरते । पावरोटी के टुकड़ों के लिए जो आते-जाते यात्री छोड़ जाते हैं/मुझे याद है अपने देश में/मेरी दादी पाकों के चींटियों के बिलों में आटा छिड़कती थी/जानती हो आकर नदी एक पाँव के नीचे कितनी चींटियाँ दबती हैं ?/एक शिक्षित बेरोजगार के सपने चींटियों से ज्यादा तो नहीं । (वर्तमान साहित्य, मई 2006, पृ. 125)

इन कवियों ने विदेशों की प्रकृति को आधार बना कर भी अनेक कविताएँ लिखी हैं । 'लंदनी धूप' हो या 'धुंध का बुर्का पहनकर आई बरतानी सुबह', इनमें बिम्बों का सृजन करते हुए कवि गौतम सचदेव देशी-विदेशी स्रोतों का आधार लेते हैं । इसलिए 'लंदनी धूप' महाजन की तरह तगादा करती दिखायी देती है । पश्चिमी जीवन की व्यस्तता और यांत्रिक सम्बन्धों को कई स्तरों पर उद्घाटित करती इनकी कविताएँ नास्टैल्लिया से शक्ति ग्रहण करती हैं । इसीलिए उन्हें विदेश की सुबह भी 'गाँव की अल्हड़ हरहरी मस्त पगडंडी सुबह' लगती है तो कभी 'भीड़-भडकम में धँसी संकोच से वहमी सुबह ।'

प्रवासी जीवन का एक मार्मिक पक्ष है संस्कृतियों की टकराहट और उससे उत्पन्न सांस्कृतिक द्वंद्व । इसे 'कल्चरल शौक' कहा गया है । तमाम प्रवासी रचनाकारों ने इसे अनुभव ही नहीं किया है बल्कि इस विषय पर बड़ी महत्त्वपूर्ण कविताएँ लिखी हैं । नरेश भारतीय की एक कविता है 'संस्कृतियों की अंतरराष्ट्रीयता' जिसमें पश्चिम की हवा का झोंका तूफान की तरह पूर्व की स्थिरता को अस्थिर कर देता है । घर खंडहर बन जाते हैं। भूकंप चाहे जितने भी मारे जाएँ लेकिन लोगों की जीवन के प्रति आस्था खत्म नहीं होती। वे लोग घर बना लेते हैं । 'पूर्व और पश्चिम का यह युद्ध / मेरे समक्ष अंतर्द्वंद्व है । धनियों में बहता है / दिल की आवाज नहीं बनती / हवा का झोंका नहीं / न तूफान ही है / पीढ़ियों का अंतर ही नहीं / संस्कृतियों की अंतरराष्ट्रीयता है ।' (वर्तमान साहित्य, प्रवासी साहित्य महाविशेषांक, पृ. 263)

निखिल कौशिक ने न सिर्फ प्रवासी जीवन के दर्द को अनुभव किया है बल्कि एक प्रवासी के विभाजित व्यक्तित्व को पूरुह तरह समझा भी है । अन्तर्मन की गहराई से उपजी इनकी कविताओं में सहन जिज्ञासा, अनिश्चित भविष्य, जीवन और अपनी ज़मीन से जुड़े रहने की दृढ़ इच्छा शक्ति तथा सार्थकता खोजने के प्रयास दिखाई देते हैं । इनकी एक

कविता है 'तुम लंदन आना चाहते हो' जिसमें ब्रिटेन के जीवन की असलियत के साथ-साथ प्रवासियों का अंतर्द्वंद्व बखूबी चित्रित हुआ है। यह कविता पढ़कर यह प्रतीत होता है कि पूरे दक्षिण-पूर्व एशिया की संस्कृति एक है, लेकिन यह अनुभव का हिस्सा यूरोप एवं अमेरिका आकर ही बन सकता है जहाँ अंग्रेजों के लिए हर भारतीय, पाकिस्तानी या बांग्लादेशी 'एशियन' होता है। अपने मित्र को लिख पत्र में भी इस वस्तुस्थिति का बयान करता है -

सब कुछ इतना बुरा नहीं है वैसे वहाँ/आम लोग यहाँ तुम्हें बस एक एशियन मानेंगे  
और पाकिस्तान में पले एक नौजवान से/तुम्हारी दोस्ती बेमिसाल होगी  
लता और मेहंदी हसन के गाने/तुम दोनों एक साथ सुनोगे  
और एक रात देर तक अंग्रेजी शराब भरे गिलास थामे  
तुम दोनों पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के एक हो जाने के सपने देखोगे।

(वही, पृ. 269)

जो नास्टैल्जिया हर भारतीय और पाकिस्तानी बुद्धिजीवी की होती है कि भारत और पाकिस्तान अपनी आपसी कटुता मिटा दें, इसको यूरोपवासियों के व्यवहार से समझा जा सकता है। अजनबीपन और बेगानेपन के साथ-साथ रंगभेद के कारण अपमानित होते एशियाई मूल के लोगों का दर्द भी यह कविता बयान करती है।

एक दिन चलते-चलते/तुम्हें यहाँ कुछ गंजे सिर के सिरफिरे छोकरे  
काला आदमी कहेंगे। और तूम धूप से बचने के लिए छाता खरीद लोगे  
पर तुम्हारो रंगों में रंगीन खून बसता है/तुम गिरगिट नहीं बन पाओगे  
बैंक मैनेजर से क्षमा मांग तुम हवाई जहाज का/वापसी टिकट थामे  
जब वतन जाओगे तो लोग तुम्हें बदला हुआ पाएँगे  
और तुम उन्हें अपनी उन्नति की गाथा सुनाते/फूले नहीं समाओगे। (वही, पृ. 269)

इस तरह बड़ी बारीकी से सांस्कृतिक अंतर्द्वंद्व तत्त्वों के प्रभाव के कारण आए बदलाव एवं अंतर्द्वंद्व को कवि ने उभारा है। स्वयं प्रवासी भी विदेश जाकर अपने को जहाँ गौरवान्वित अनुभव करने लगता है, वहीं लोग उसे अपने से अलग मानने लगते हैं। कवि ने इस यथार्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है -

न तुम यहाँ स्वीकारे-जाओगे/न वहाँ/जिस जमीन से तुम उकता रहे हो मेरे मित्र  
मेरी सलाह मानो/वहीं पर टिके रहो/दो चार मौसम और सह चुकने के बार  
तुम वही अच्छी तरह पनपने लगोगे। (वही, पृ. 270)

प्रकांतर से कवि इस ध्वन्यार्थ को इंगित करता है कि अपनी जड़ों से उखड़ा हुआ मनुष्य सरलता से दूसरी जमीन में अपनी जड़े नहीं जमा पाता। प्रवासी मन का यही अंतर्द्वंद्व,

## संगोष्ठी सौरभ

---

उसे अपनी जड़ों से जोड़े रखता है । इन प्रवासी कवियों का मन इसी कारण बार-बार भारतीय परिवेश और संस्कारों को सुधि-मंत्रों की तरह याद करता है । इस तरह प्रवासी रचनाकारों की कविताओं में अनुभूतियों की गहराई, अकेलापन, ऊब और पुरानी यादों के साथ-साथ सांस्कृतिक टकराहट से उपजे अंतर्द्वंद्व की कसक बड़ी शिद्दत के साथ अभिव्यक्त हुई है ।

अध्यक्ष ( हिन्दी विभाग )

क. जे. सोमैया कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय  
विद्याविहार, मुम्बई



## The Deconstructive Trends in the Vyaktiviveka

✍Dr. Narayanan E. R.

Aim of the Paper : To establish the liberty from the strict interpretation trends in the *Vyaktiviveka* of Mahimabhata (11th Century AD).

1. The Unemphasised Predicate,
2. Deviation from the Context,
3. Change of Order,
4. Tautology,
5. Non-Mentioning of what is to be mentioned and
6. Mentioning of what is not to be mentioned.

One of the most well-known postmodernist concerns is "deconstruction," a theory for philosophy, literary criticism, and textual analysis developed by Jacques Derrida. The notion of a "deconstructive" approach implies an analysis that questions the already evident understanding of a text in terms of presuppositions, ideological underpinnings, hierarchical values, and frames of reference. A deconstructive approach further depends on the techniques of close reading without reference to cultural, ideological, moral opinions or information derived from an authority over the text such as the author. Criticisms of postmodernism are intellectually diverse with the existing expressionism. Thinkers who have been called structuralists include the anthropologist Claude Lévi-Strauss, the linguist Ferdinand de Saussure.

Derrida's method frequently involves recognizing and spelling out the different, yet similar interpretations of the meaning of a given text and the problematic implications of binary oppositions within the meaning of a text. Derrida's philosophy inspired a postmodern movement called the deconstructivism among architects, characterized by the intentional fragmentation, distortion, and dislocation of architectural elements in designing a building.

Postmodernism describes a broad movement that developed in the mid- to late-20th century across philosophy, arts, architecture, and criticism and that marked a departure from modernism.

Those who began as structuralists but became post-structuralists include Michel Foucault, Roland Barthes, Jean Baudrillard, Gilles Deleuze.

Other post-structuralists include Jacques Derrida, Pierre Bourdieu, Jean-François Lyotard, Julia Kristeva, Hélène Cixous, and Luce Irigaray.

Liberty from the strict interpretations and applications of structuralist ideas. The early writings of the psychoanalyst Jacques Lacan and the literary theorist Roland Barthes have also been called structuralist.

### **The Unemphasised Predicate ( विधेयाविमर्शः )**

संरम्भः करिकीटमेघशकलोद्देशेन सिंहस्य यः

सर्वस्यैव स जातिमात्रनियतो हेवाकलेशः किल ।

इत्याशाद्विरदक्षयाम्बुदघटाबन्धेऽप्यसंरब्धवान्

योऽसौ कुत्र चमत्कृतेरतिशयं यात्वम्बिकाकेसरी ॥

Here the negation culmination in affirmation in the case of असंरब्धवान् (The final member dominates in Tatpusha)

In the case of असंरब्धवान् the final member dominates in Tatpurusha and the initial negation has the inferior value in the negation culmination in affirmation.

### **Deviation form the Context (प्रक्रमभेदः)**

The Break of Symmetry being either in expression or construction, नाथे निशाया नियतेर्नियोगादस्तं गते हन्त निशापि याता is an instance of the former, where गता निशापि would relieve the irregularity of expression.

And विश्रब्धं क्रियतां वराहतमिभिर्मुस्ताक्षति पल्वले is an instance of the latter, where the symmetry of the verse requires the active instead of the passive construction, and the fault may be removed by reading the line as विश्रब्धा रचयन्तु शूकरवरा मुस्ताक्षतिं पल्वले ।

### **Change the Order (क्रमभेदः)**

तीर्थे तदीये गजसेतुबन्धात् प्रतीपगामुत्तरतेऽस्य गङ्गाम् ।

अयत्नबालव्यजनीबभूवुर्हंसा नभोलङ्घनलोलपक्षाः ॥

The pronouns तदीये and अस्य are not mentioning the object for which they stand, and such usage of pronoun is faulty.

### **Tautology (पौनरूक्त्यम्)**

Tautology is generally classified into two types : that which pertaining to word and pertaining to meaning.

वस्त्रायन्ते नदीनां सितकुसुमधराः शक्रसङ्काश! काशाः

काशाभा भान्ति तासां नवपुलिनगताः श्रीनदीहंस! हंसाः ।

हंसाभोऽम्भोदमुक्तस्फुरदमलवपुर्मेदिनीचन्द्र! चन्द्र-  
श्चन्द्राभः शारदस्ते जयकृदुपगतो विद्विषां काल! कालः ॥

If there is neither the difference in the meaning not the difference in the intended import, then the repetition of words is decidedly an instance of the defect entitled the tautology.

### Non-Mentioning of what is to be mentioned (वाच्यावचनम्)

कनकनिकषस्निग्धा विद्युत् प्रिया न ममोर्वशी ॥

Here no pronoun has been mentioned to indicate विद्युत् (lightning). But the term “lightning” is directly mentioned.

Whereas the pronoun like “this” was most essential to the context. So, the defect is the “Non-Mention of that which ought to be mentioned.”

### Mentioning of what is not to be mentioned (अवाच्यवचनम्)

सरित्समुद्रान् सरसींश्च गत्वा रक्षःकपीन्द्रैरुपपादितानि ।  
तस्यापतन् मूर्ध्नि जलानि जिष्णोर्विन्ध्यस्य मेघप्रभवा इवापः ॥

जलानि (Waters), आपः (Waters). Here the same object has been regarded as both of them and so, it is vitiated by the Defect-Styled-Mention of the Non-Mentionable.

### Conclusion

So, such a criticism through the deconstruction of elements in different sentences of the poems shows the resemblance of the current post-structuralism in the literary world. Here the established styles have been counter argued.

### References:

1. The Aesthetic Experience According to Abhinavagupta, Raniero Gnoli, Chowkhambha, Varanasi, 1985, ISBN-8170800064.
2. <https://en.wikipedia.org/wiki/Postmodernism>.
3. The Elucidation of Poetic Blemishes in the Vyaktiviveka, Trilokanath Jha, Darbhanga, 1987.

Asst. Prof. (Sahitya)  
Rashtriya Sanskrit Sansthan  
(Deemed University)  
Guruvayoor Campus  
Kerala.



## Universalization of Education: Problems and their Remedies

Dr. V. S. V. Bhaskar Reddy

Universalization of Elementary Education is Constitutional right as per Right to Education act (2009). Education is every body's birth-right and it is binding on any government to provide facilities for education for children who are born and reach the school-going age. It was stipulated to achieve Universalization within 10 years from the introduction of Constitution and that is by 1960. But it is now more than seven decades after the scheduled time. Now the problems with certain possible remedies to solve them have been discussed as follows:

### 1. Faulty Policy of Government:

The constitutional right is that states shall endeavour to provide free and compulsory education to all children until they complete the age of 14 years. But it is a matter of regret that the prescribed goal has not been reached as yet. The main cause for this is that the policy of Government was based on idealism. Basic education was accepted as the form of national education. Being inspired with this aim, work started to convert the existing primary schools into basic schools. India is a vast country with a very large population. Money was too much in shortage for implementation of so expensive a scheme of conversion of a large number of Elementary Schools. Government has also admitted this. In such a situation, the best policy would have been to make separate treatment for the basic schools along with the general primary and middle schools.

### 2. Political Difficulties:

Education is the basis of democracy. It is necessary to educate the citizens in order to make democracy a success. But so far the Government of India has not been able to devote their full attention towards education. Main reason is that since the attainment of Independence, Government had to face the problems of food, of inimical neighbours, the problem of Kashmir, the problem of linguistic states etc. Those problems still exist and these problems have all along forced to allocate so much money that Government has not been able to devote their due attention for elementary education. The Government is responsible to solve the political problems; the Government is also duty-bound for smooth

progress of public education. On no account, this indifference of Government towards universal primary education could be justified.

### **3. Faulty Administration of Education:**

In most of the states the responsibility of universal primary education is on the authorities of Blocks, Municipalities and Educational Districts. The progress of expansion of primary education gets slow because of the indifference and incapability of these institutions. In fact, it is the responsibility of the nation to educate its citizens. It is necessary that the Government of India should take upon itself the sacred work of universal enrolment and universal retention at the Elementary stage. In fact it is the responsibility of the action to educate its citizens.

### **4. Dearth of Money:**

Inadequacy of money is a serious problem that confronts primary schools. Income of the local institutions responsible for primary education is so much limited that they are totally incapable of meeting the expenditure of compulsory education. To meet the requirements of compulsory basis education it was estimated that an annual expenditure of 6% GDP will be required.

### **5. Dearth of Trained Teachers:**

There is shortage of trained teachers to make Elementary Education Universal and compulsory. Nowadays, the young teachers do not wish to work in rural areas. But the fact remains that majority of Primary Schools are in rural areas. The chief reason of non-availability of suitable teachers is that teaching work is not attractive for many persons, since the salary of primary teachers is hopelessly low. The condition of Scheduled areas is still more miserable. The hilly and impassable jungle areas with very poor communication and transport facilities fail to attract the present day luxury-loving young men. Teachers should be provided with proper residence in the villages of their work. The question of Women teachers is very much special. So the question of teacher's quarters, residential schools, especially residential Ashram Schools in the Scheduled areas should be provided. The quality of teachers can be improved by executing a training programme for the untrained teachers in service on basis of study-leave basis.

### **6. Establishment and School Buildings:**

All India Educational Surveys indicate that even now there are lakhs of villages and habitations without schools. There are nearly 4 lakhs schoolless villages in India which are to be given schools. It is not that easy to provide necessary funds for setting up such a large number of schools with buildings and other equipments. In order to meet this problem of new buildings along with the existing schools in private houses, temples, verandah of rich persons, residence of teachers etc. should be met by construction of low cost houses of thatch or tile with local materials; looking to the weather conditions of certain places open air stands may be taken up in the Shanti-Niketan pattern. All the same, the Primary schools should have accommodations of their own as far as practicable. Problem of school houses along with the problem of lack of teachers in all the primary schools can be solved through shift system in the existing schools. In order to enrol the additional age-group 6-14 children additional section rooms should be constructed.

### **7. Unsuitable Curriculum:**

The curriculum for primary schools is narrow and unsuitable to the local needs. The curriculum should be interesting for the children for its continuance. Learning by work should replace the emphasis on monotonous bookish knowledge. Education of craft should be given in the primary schools in accordance with the local needs and requirements. But the schemes of craft education in the primary schools should not of highly expensive ones.

### **8. Wastage and Stagnation:**

It is another major problem and great obstacle for universalization of Elementary Education. Out of every 100 students enrolled in class - I more than half leave schools by Class IV, only 32 (as per GOI data) pupils reach class V and only 26 (as per GOI data) reach class VIII. This is due to the lack of educational atmosphere, undesirable environment, lack of devoted teachers, poor economic condition of parents, absence of proper equipment etc. In order to check such massive wastage and stagnation at the primary stage, existing educational system and curriculum should be reformed, teaching method should be interesting, school buildings should be adequate and neat and clean, and the parents should be educated. These may help the problem of wastage and stagnation to be solved.

### 9. Natural Obstacles:

Natural barriers are the great obstacles in the way of expansion of compulsory education. The village and small habitations in areas of Himalayan regions, Kashmir, Chamba, Garhwal, Almora with less population are situated in distances apart. So also the desert areas in Rajasthan, the dense forest areas in Madhya Pradesh, Orissa, Assam and many Southern States create problems for expected enrolment. These are very very difficult areas with lack of communication and of Education and School Organization absence of transport. It is desirable to make provision, for schooling facilities even in small habitations without leaving much for mobility of small children in the severe cold, heat or heavy rains

### 10. Social Evils:

Social evils like superstition, illiteracy faith in ancient conventions and customs, child marriages, untouchability, pardah system etc. create innumerable obstacle in the expansion of compulsory primary education. Still man; persons get their sons and daughters married at a very minor age against the Child Marriage Prohibition Act and deprive these school-going children of the fruits of education. Because of illiteracy and ignorance these social evils grow. The educated young men and women should volunteer themselves to remove these evils of society in their neighbourhood. Against these social evils, the work of expansion of universal enrolment should not be slackened, since social evils flourish because of illiteracy and ignorance.

### 11. Language Problem:

2011 Census reports about 826 languages and 1652 dialects in the country. The Constitution of India, 2018 mentions 22 languages, which can be made medium of education. Compulsory education has not been fully introduced among the Scheduled Castes and Scheduled Tribes and denotified tribes in the country. This is due to the hindrances of languages as medium of education.

In the Five Year Plans the incentive programmes of free text-books, free uniform, stipends in hostels, and conversion of Residential Ashram Schools etc. do not improve matters much.

The responsibility of education of these castes and tribes, who are staggering under the weight of misery and poverty for centuries, should not be left alone on Govt. Voluntary and philanthropic organization and people should come forward to

assist the Government in this sacred and significant work of the nation

### References

1. <https://www.quora.com/What-is-the-meaning-of-universalisation-of-education>
2. <https://www.researchgate.net/publication/26549740>  
[Universalisation of Elementary Education in India](#)
3. Ganta Ramesh; Foundations of Education, Neelkamal publications, Hyderabad.
4. A S Ramakrishna; Educational Psychology, New Era Publications, Guntur.
5. Telugu Academy; Inclusive Education, Hyderabad.
6. Telugu Academy; Foundations of Education in the present context, Hyderabad.

**Assistant Professor, (Shiksha-Shastri)**  
**Rashtriya Sanskrit Sansthan**  
**(Deemed University)**  
**K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham**  
**Vidyavihar, Mumbai – 77**



# समीक्षा, संकल्पना आणि स्वरूप

डॉ. नवनाथ गोरे

### प्रस्तावना :

‘समाज’ या संज्ञेसोबतच समाजाचे दैनंदिन जीवन, नित्यकर्म, आचार, विचार, आदान-प्रदान, उपजिवेकेचे व्यवहार-व्यवसाय, नाती-गोती, संस्कार नीती मूल्ये, रुढी परंपरा अशा सर्व व्यापक आजच्या प्रगत संस्कृती, आधुनिक जीवन शैलीची जाणीव होते. मानवाने ‘समूह’ भावना स्वीकारल्या पासूनच त्यांचा सांस्कृतिक प्रवास सुरु झाला. आपले सुख दुःखादी भाव-भावनांना तो कधी शब्दाच्या रुपाने तर कधी चित्र, शिल्प, गीत, संगीत, नृत्य, नाट्य, उत्सव, सण अशा रुढी परंपरा निर्माण करत अभिव्यक्त होत गेला. मानवाच्या व्यक्तिगत, सामाजिक, कल्पनाबंधात्मक आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, अशा लौकिक व पारलौकिक अनुभवांना शब्दरूप देत पुढे अक्षर रुपाने ‘साहित्य’ संकल्पना रुढ झाली.

मानवाच्या व समाजाच्या ब-यावाईट, लौकिक अलौकिक अक्षर अनुभूतींना, अनुभवांना नीती-अनीती, श्लील-अश्लील, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, कल्पना-वास्तव, आदर्श-निषिद्ध वर्गवारीत मापले, तोलले जाऊ लागले. कधी मानवी जीवनाला सुकर व्हावे, आधारभूत व्हावे अशा अनुभवांना आदर्श, विधायक रुप देत देवदैवता, ईश्वर प्रार्थना-अर्चनेचे रुप देत तर कधी मानवी जगणे व अस्तित्वाच्या भावनांनाच आदर्श मानत ‘वास्तव’ भूमिका मांडणारे साहित्य निर्माण होऊ लागले. पाप-पुण्य, श्रद्धा-अंधश्रद्धा, वैज्ञानिकता-आधुनिकता, देव-दानव अशा मूल्यात्मकतेच्या कसोट्या घेऊन साहित्यसंज्ञा विकसित झाली. मोल असेल तर मूल्यात्मकता टिकून राहते. त्यामुळेच गुणात्मक, दर्जात्मक, साहित्याची चिकित्सा होऊ लागली. या मूल्यमापनालाच साहित्य संज्ञेत ‘समीक्षा’ रुप संकल्पनात्मक पातळीवर सर्वमान्य झाले.

आज घडीला ‘साहित्य समीक्षा’ संकल्पनेत विविध प्रकार उपप्रकार अभ्यासले जातात. आदिबंधात्मक साहित्य समीक्षा, मानसशास्त्रीय साहित्य समीक्षा, तौलनिक साहित्य समीक्षा, आस्वादक साहित्य समीक्षा, वास्तववादी समीक्षा, मार्क्सवादी समीक्षा, संरचनावादी समीक्षा, आधुनिकतावादी-उत्तर आधुनिकतावादी, स्त्रीवादी समीक्षा आंबेडकरवादी-गांधीवादी समीक्षा अस्तित्ववादी समीक्षा देशीयतावादी समीक्षा अशा विचार प्रवाह, कल्पनाबंधात्मक, आकृती बंधात्मक समीक्षेची विविधरुपे पाहावयास मिळतात. Criterion - कसोटी, निकष,

Critic - समीक्षक, टीकाकार, Criticism - समीक्षा टीकाशास्त्र, समीक्षण, समीक्षा विचार<sup>1</sup> समीक्षे संदर्भात परिभाषा कोशात विवरण दिले आहे.

खरं तर समन्यायी डोळ्याने सर्वांगाने परीक्षण करणे या हेतूतूनच साहित्याची समीक्षा अपेक्षित असते. साहित्य, शिल्प, गीतसंगीत, नृत्य अशा कलाकृती संदर्भात मूल्यमापन करतांना निर्माता अर्थात लेखक व कलावंत त्यांच्या सभोवतीचे सामाजिक, धार्मिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक एकूणच पर्यावरणाचा कालसापेक्ष परिणाम होता तसाच लेखकाची दृष्टी त्याची जडण-घडण यांचाही निश्चितच परिणाम होत असतो. मग निर्माण झालेल्या परिस्थितीतील कलाकृतीचे मूल्यमापन, परीक्षण, समीक्षा करतांनाही अशा सर्व बाबींचा विचार करावा लागतो. समीक्षकाला समकालीन जाणिवा परिस्थिती, सोबतचा अवकाश, यांचे आकलन असायलाच हवे. या संदर्भात 'चांगल्या टीकेची प्रशंसा व अप्रामाणिक टीकेची निर्भर्त्सना ही जर समाजात नसतील तर टीकाकार बेजबाबदार होतील. या सोबतच टीकाकार लेखकास त्याचे कार्य काय आहे हे समजून यावे. मार्मिक, जबाबदार आणि दूरदृष्टी टीकाकारास मदत करीत आहे की आपकर्ष करीत आहे याची कल्पना असणे अवश्य आहे.'<sup>2</sup> हा श्री. व्य. केतकरांचा समीक्षे संदर्भातील विचार महत्त्वाचा आहे. समीक्षक हा नीरक्षीरविवेकी असायला हवा अशी अपेक्षा असते. त्याने कलाकृतीचे मोल काळाच्या कसोटीवर तावून सुलाखून घेणे गरजेचेच तसेच संबंधीत कलाकृतीच्या सर्जकाबद्दल, निर्मिक लेखकांबाबतही आपली दृष्टी व दृष्टीकोन पूर्वग्रह न ठेवता प्रामाणिक असणे आवश्यक आहे.

समीक्षकास सामाजिक, राजकीय, ऐतिहासिक, भाषिक, सांस्कृतिक अशा बाबींचे ज्ञान आवश्यक असतेच परंतु त्या सोबतच विविध विचारसरणी, विचारवंत, कलाप्रकार आधुनिक विचार इतर ललित कलांचे ज्ञान, मनोवृत्तीची जाणीव असे चौफेर व बहुश्रुतपणा त्यांच्या जवळ हवा-कालसापेक्षता, न्यायबुद्धी याआधारे साहित्य, साहित्यप्रवाहाचे, साहित्य प्रकारांचे, विशिष्ट काळातील इतिहासाच्या कालखंडातील कलाकृतीचे त्यांना सहज आकलन करून समीक्षा करता आली पाहिजे. 'कलाकृती कालची असो की हजार वर्षांपूर्वीची असो, ती 'आता' अस्तित्वात असते, निरीक्षणार्थ समोर उपलब्ध असते व काही कलात्मक समस्यांचे निराकरण तीत गर्भित असते. समीक्षातत्त्वाचा सतत आधार घेतल्याविना तिचे विश्लेषण, स्वरुपांकन वा मूल्यमापन होण्यासारखे नसते. 'साहित्येतिहासकार' हा इतिहासकार या नात्यानेही समीक्षक असायलाच हवा.'<sup>3</sup> हा थेअरी ऑफ लिटरेचर मधील महत्त्वाचा समीक्षा विचार केंद्रीभूत ठेवूनच समीक्षा, समीक्षण व्यवहार पुढे जाऊ शकतो.

'समीक्षा व्यवहारात कलाकृती बरोबरच तिचा निर्माता, त्या साहित्यकृतीचा प्रकार, निर्मिती काळ व सामाजिक पर्यावरणाचा विचार प्रामुख्याने केला जातो. समीक्षेच्या विविध

संकल्पनेनुसार त्याच कलाकृतीकडे पाहण्याची दृष्टीही बदलत जाते प्रामुख्याने आदिबंधात्मक साहित्य समीक्षेत कथा, काव्य, कादंबरीच्या मूळ साहित्य प्रकाराच्या, आकृतीबंध, तंत्र निवेदन, आशयाचे सादरीकरण, भाषा अशा अनुषंगाने विचार केला जातो. तौलनिक साहित्य समीक्षेत प्रामुख्याने दोन कलाकृती, प्रवाह, निर्मिती काळ, आशय, भाषा, कालसापेक्षता, मांडणीचे वैशिष्ट्ये, वेगळेपणा, सत्यार्थता, कलात्मक मूल्ये, वास्तवाला उजागर करण्याचे प्रमाण अशा प्रकारे मूल्यमापन अपेक्षित असते. तर आस्वादक साहित्य समीक्षेत रचनाकृतीचे रसिक वाचकाशी असलेले नाते, साहित्यकृतीचे अंगभूत तत्व, आशय, कलात्मक मूल्य, रसिकनिष्ठता, आशयनिष्ठता, इतर साहित्यकृतीपेक्षा असलेले वेगळेपण, कालसापेक्षता, शैली, भाषा अशा प्रकारे समीक्षण, अपेक्षित असते तर मानसशास्त्रीय साहित्य समीक्षेत रचनाकृतीचा निर्माता, साहित्य-रचनेतील विविध पात्रांची मानसिकता, वर्तनाचा प्रामुख्याने विचार केला जातो. मानसशास्त्रीय साहित्य समीक्षेत समकालीन सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक पर्यावरणासोबतच सर्जकाची जडण-घडण, निर्मितीचे मनोविश्लेषण केले जाते. वर्तनाच्या अभ्यासावरूनच निर्मितीची, साहित्यकृतीचा गुणवैशिष्ट्ये गुणदोषाचे विश्लेषण केले जाते.'

### मानसशास्त्रीय साहित्य समीक्षा

सिगमंड फ्राईडच्या मनोविश्लेषणाचा अर्थात मानवी विचार-वर्तनाचा मानसशास्त्रीय दृष्टीकोनातून वेध घेण्याचा प्रयत्न यातून होतो. गांधीवाद व आंबेडकरवाद या विचारातून आलेल्या साहित्यासंदर्भात समीक्षक डॉ.रा.ग.जाधव यांनी गांधीजींच्या 'सत्यांचा प्रयोगाचे' ऐहिक उद्दिष्ट 'अहिंसात्मक मनुष्यसमाज निर्माण करणे' हे सांगितले तसेच स्वानुभवाशी केवळ प्रामाणिक राहणे पुरुषे नसते तर त्यांची चिकित्सा अहंनिरपेक्ष वृत्तीने करणे आवश्यक असते हेच गांधीजींच्या आत्मकथेचे सूत्र होय. तर शोषणमुक्त भेदभाव आणि श्रेष्ठकनिष्ठता विरहीत करुणामय समाज- निमिती हे फुले-आंबेडकरी साहित्य सिद्धांताचे स्वरूप असल्याचे नोंदवतात. एकूणच एखादा विचार, मनोवृत्ती, मनोवस्था त्या त्या साहित्य प्रकारातून, रचनाकृतीतून आपले स्वतंत्र अस्तित्व निर्माण करतांना दिसत. बहिणाबाईची गाणी, नारायण सुर्वेची कविता, विंदा करंदीकरांची कविता, साने गुरुजींचे साहित्य, पु.भा.भावेंचे साहित्य, विं. दा. सावरकरांचे साहित्य, अण्णाभाऊ साठे यांचे साहित्य बाबुराव बागुल, कुसुमाग्रजांची कविता यातून आपणास मानसशास्त्रीय साहित्य समीक्षेच्या आधारे काही निष्कर्ष, विचारसरणी, लेखकाला अपेक्षित असलेला वर्तन बदल निश्चितच पाहावयास मिळतो. डॉ. नागनाथ कोतापल्ले यांनी समीक्षे संदर्भात 'साहित्य समीक्षा व्यवहाराची कार्ये सांगताना साहित्याचे आकलन, आस्वाद आणि मूल्यमापन ही तीन होत, आकलन आणि आस्वाद या बाबी समीक्षेच्या पहिल्या पायरीवर तर अंतिमतः मूल्यमापन ही समीक्षाशास्त्राच्या दृष्टीने महत्त्वाची बाब आहे.'<sup>4</sup> म्हणले आहे. लेखक

हा मुळातच परिवर्तनाचे संकल्प केलेला सर्जक असतो. तो स्वप्नातील जग निर्माण करण्यास तत्पर असतो. तेच मनातील परिवर्तनीय विश्व साहित्यकृतीतून पूर्णत्वाला नेण्याचे प्रयत्न करतो. अण्णाभाऊ साठे यांनी कामगार जीवन जगले, अनुभवले आहे. त्याचे श्रम, मोल, कष्ट, मिळकत याची जाणीवही आहे. म्हणूनच ही पृथ्वी शोषाच्या मस्तकारवर तरली नसून ती श्रमिकांच्या तळहातावर तरली आहे म्हणतात तर नारायण सुर्वे 'कामगार आहे मी, तळपती तलवार आहे, सारस्वत्ताने थोडा गुन्हा करणार आहे' अशी भावना व्यक्त करतात.

मानसशास्त्रीय समीक्षेत मानवीकृती वृत्ती-प्रवृत्तीचा वेध घेण्याचे कार्य प्रामुख्याने केले जाते. वास्तववादी साहित्य, कल्पनारम्य साहित्य, एखाद्या विचाराला वाहिलेले साहित्य यातून मनोवृत्ती, मनोवस्था सहजतेने डोकावतांना दिसते, साने गरुजींच्या साहित्यातून गांधी विचार, वात्सल्य भावना, स्नेहार्द प्रेम भावना आपणास सहजतेने आढळून येईल. लेखकाच्या रचनाकृतीतून त्यांच्या पात्रातून, भूमिकेतून लेखक स्वतःची मनोभूमिका मांडत असतो. तर कधी आपल्या आपणास हवे असलेले परिवर्तन तो कथा, कविता, नाट्यातून पूर्ण करून घेत असतो. मनोविश्लेषणात्मक साहित्य समीक्षेत कधी कधी पलायनवादी भूमिका दिसून येते. लेखक मूळ प्रश्न समस्यांना बाजूला सारून दुसरीकडे लक्ष वेधतो या विषयी वा.म.जोशी, प्रा.कृ.ना. फडकेंच्या भाषणाचा हवाला देत म्हणतात, 'रवींद्रनाथ टागोरांसारख्याची काव्ये कलादृष्ट्या कितीही गोड असली, तरी देशाला आग लागली असता आणि गरीब लोक अन्नान करून मरत असता, असली गाणे रचणे किंवा त्यात दंग होणे वेडेपणाचे होय. रोमला आग लागली असता रोमचा अधिपती नीरो हा वाद्यवादनात गुंग होता.'<sup>5</sup> येथे मतितार्थ हा की समाजहिताकडे दुर्लक्ष करता त्याज्य दुष्णार्ह असल्याचे व्यक्त करतात. येथेही मानसशास्त्रीय अंगाने विचार करणे गरजेचे आहे.

स्वैर, स्वच्छंदी, कामूक, कल्पनारम्य साहित्य विश्वात विहार करणारी लेखक मंडळी कधी वास्तवाला भिऊन दूर जात असते, सतत वेगळ्या विश्वात रममान होणे काही जण वेडेपणाचे मानतात. इटालीयन शास्त्रज्ञ लॉंब्रोसो हा प्रतिभा ही वेडाची बहीण आहे म्हणतो. या अर्थाने तो विद्वानांचे वेडेपणाचे, विक्षिप्तपणाचे अनेक दाखले देतो तसे काही विद्वान, प्रतिभावान वेडेपणा करत ही असतील तर काय सारे वेडे विद्वान थोडेच आहेत. 'विद्वान मंडळी स्वतःमूल्यनिर्णय करण्यास आढेवेढे घेतात, त्याचे कारण म्हणजे आत्मप्रत्ययाचा अभाव व भित्रेपणा होय.'<sup>6</sup> ही वास्तवाची नोंदही महत्वाची आहे.

समीक्षा ही साहित्य व्यवहाराला पुढे नेणारी, विकसित करणारी असायला पाहिजे, समीक्षेच्या संकल्पना, पद्धती कोणत्याही असू द्या समाज व साहित्य एकरूप करण्याचे कार्य समीक्षेचे आहे. 'साहित्याच्या आशयद्रव्याची, रंगरूपाची, अर्थपूर्णतेची, मूल्यांची संगती लावून

## संगोष्ठी सौरभ

देणारे समग्रलक्षी चिंतन म्हणजे समीक्षा.” असे समीक्षक रा. ग. जाधव म्हणतात. शेवटी समीक्षा ही समाजाचे वास्तवासह, आदर्श मूर्त रुप निर्माण करणारी असावी. मनुष्य विकासाचा वेध धेणारी साहित्य समाज व संस्कृतीला दिशादर्शक ठरवणारी असावी. तटस्थ, स्वतंत्र, नीरक्षीरविवेकी समीक्षा श्रेष्ठ मानली जाते.

### संदर्भ :

1. कुलकर्णी वा.ल. - साहित्य समीक्षा परिभाषा कोश, प्रका. भाषा संचालनालय, मुंबई. प्र.आ. मार्च 1987, पृ.12.
2. पवार गो.मा. - निवडक मराठी समीक्षा, साहित्य अकादमी, नवी दिल्ली, 2008 पृ. क्र. 63.
3. मालशे स.गं. : साहित्य सिद्धांत (अनु. थेअरी ऑफ लिटरेचर), म.रा.सा.सं.मं.मुंबई तिसरी आ.2011 पृ. 39.
4. जाधव मनोहर : समीक्षेच्या नव्या संकल्पना , स्वरुप प्रका. औ.बाद. 2001 पृ. 7.
5. पवार गो.मा. : निवडक मराठी समीक्षा, उनि पृ. 76.
6. मालशे स.गं. : साहित्य सिद्धांत उनि पृ. 39.
7. जाधव रा.गं. : निवडक समीक्षा, पद्मगंधा प्रकाशन पुणे. प्र.आ. 2006 पृ.165.

डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर कला व वाणिज्य महाविद्यालय,  
औरंगाबाद.

मो. नं. ९४२३१८१९५७



# मिताहार, पथ्य, अपथ्य, हिताहार व अहिताहार का यौगिक स्वरूप

डॉ. सोमवीर आर्य

आहार मानव जीवन की सर्वप्रथम अनिवार्यता है। आहार वह ठोस अथवा तरल पदार्थ है जो जीवित रहने, स्वास्थ्य को बनाए रखने, सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों की एकता हेतु, संवेगात्मक तृप्ति, सुरक्षा, प्रेम आदि हेतु आवश्यक होता है। अब प्रश्न उठता है कि आहार किस प्रकार का होना चाहिए? मिताहार, पथ्य, अपथ्य, हितकर व अहितकर आहार क्या है? इनका शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा योगमार्ग पर अग्रसर साधक को किस प्रकार के आहार का निर्देशन आचार्यों ने किया है? आदि प्रश्नों के उत्तर को आप सबके सामने प्रस्तुत करना ही इस शोध का उद्देश्य है। प्राचीन ऋषियों/आचार्यों ने योगाभ्यास से पूर्ण लाभ के इच्छुक व्यक्ति को मिताहार करने का स्पष्ट उपदेश दिया है। उनके अनुसार बिना मिताहार के योगारम्भ करने वाले अभ्यासी को नाना प्रकार की व्याधियाँ होती हैं और योग में सिद्धि भी प्राप्त नहीं होती। मिताहार से तात्पर्य है क्षुधा अर्थात् भूख से कुछ कम, ताजा, सात्विक, पुष्टिदायक, स्निग्ध, आसानी से पचने वाला और रसयुक्त भोजन करने से है। अधिक मिर्च-मसाले युक्त, तले हुए तथा बासी आहार को अहिताहार समझना चाहिए। मात्रा में अधिक आहार भी हानिकारक होता है। इन्हीं सब विषयों के विस्तृत विवेचन के लिए शोध प्रस्तुत है।

### आहार का अर्थ

कोई भी पदार्थ जब अन्नमार्ग से ग्रहण किये जाने पर जीवनी शक्ति उत्पन्न करे, शरीरस्थ धातुओं का पोषण करे, उनकी रक्षा तथा क्षतिपूर्ति करे, जीवन की प्रक्रिया को संयमित करे तथा शरीर के महत्वपूर्ण अंशांशों की उत्पत्ति में सहायक हो, उसे आहार कहते हैं।

चरक संहिता में मानव शरीर एवं व्याधि दोनों को आहार सम्भव माना गया है।<sup>1</sup> उपयुक्त आहार ही शरीर के समुचित विकास, सुख एवं स्वास्थ्य का हेतु है। तभी आहार की गणना स्वास्थ्य के तीन उप-स्तम्भों में की गयी है।<sup>2</sup> आहार को स्वास्थ्य के तीन उपस्तम्भों में गणना होने से इसके महत्व का आंकलन स्वयं ही किया जा सकता है। आहार से बल, वर्ण तथा ओजस् की प्राप्ति होती है।<sup>3</sup> अतः आहार स्वस्थ तथा रोगी दोनों के लिए

समान रूप से महत्वपूर्ण है। बिना आहार के स्वस्थ व्यक्ति भी स्वस्थ नहीं रह सकता। इसलिए आहार प्रत्येक मनुष्य के जीवन में अति आवश्यक है।

### आहार की परिभाषा

आहार वह ठोस अथवा तरल पदार्थ है जो जीवित रहने, स्वास्थ्य को बनाये रखने, सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों की एकता हेतु संवेगात्मक तृप्ति, सुरक्षा, प्रेम आदि के लिए आवश्यक होता है। व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक क्षमता के सन्तुलन के लिए आहार अत्यन्त आवश्यक है।<sup>4</sup>

### पोषण

पोषण का अर्थ है "Act or Process of Nourishing" अर्थात् भोजन चूषक कार्य अथवा प्रक्रिया। यहाँ 'चूषक' शब्द से अभिप्राय है-भोजन के प्रमुख तत्वों को खींचकर शरीर का एक अंग बनाना है।<sup>5</sup>

“पोषण भोजन, पोषक तत्वों तथा उसमें पाये जाने वाले अन्य तत्वों के कार्य, उनके आपस में सम्बन्ध तथा स्वास्थ्य एवं बीमारी से सम्बन्ध, सन्तुलन तथा वह सारी प्रक्रिया जिसके द्वारा जीव भोजन लेते हैं जैसे पचाना, अवशोषित करना, परिवहन, प्रयोग तथा उत्सर्जन आदि का विज्ञान है।”<sup>6</sup>

### पोषण के प्रकार :-

पोषण को चार भागों में बांटा गया है-1. सुपोषण, 2. कुपोषण, 3. अत्यधिक पोषण, 4. अपर्याप्त पोषण।

1. **सुपोषण :-** सुपोषण अथवा उत्तम पोषण से तात्पर्य है जिसमें व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से सन्तुलित रहे तथा कार्यक्षमता उसकी उम्र के अनुसार हो। उक्त पोषण से ही व्यक्ति को उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।<sup>7</sup>
2. **कुपोषण :-** जब भोज्य पदार्थ गुण व परिणाम में अपर्याप्त लिये जाए जिससे भोजन द्वारा शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति न हो पाये तो वह कुपोषण की स्थिति कहलाती है।<sup>7</sup>
3. **अत्यधिक पोषण :-** यह भी एक प्रकार का कुपोषण है, जिसमें शरीर के आवश्यकता से अधिक भोजन ग्रहण करने पर मोटापा व उससे सम्बन्धित बीमारियाँ देखी जाती है।<sup>9</sup>
4. **अपर्याप्त पोषण :-** जो पोषण शरीर की आयु, आवश्यकता के अनुरूप न हो उसमें किसी एक अथवा अधिक तत्वों की कमी पायी जाये। इसमें आहार की न्यून मात्रा या पौष्टिक गुणयुक्त आहार की कमी पायी जाती है।<sup>10</sup>

अतः उचित आहार की हमारे शरीर को नितान्त आवश्यकता होती है। भोजन के माध्यम से शरीर में जब पौष्टिक तत्वों का प्रवेश होता है तो कुछ निश्चित कार्यों का सम्पादन करते हैं -

शरीर का निर्माण करना, उर्जा प्रदान करना, शरीर के अंगों को क्रियाशील बनाये रखना, शरीर में होने वाली टूटफूट की पूर्ति करना, शरीर में रोग प्रतिरोधक शक्ति बनाये रखना आदि ।

इस प्रकार आहार अथवा भोजन ही हमारे शरीर को क्रियाशील बनाकर हमारे सभी कार्यों का सम्पादन करवाता है । अब प्रश्न उठता है कि आहार कैसा हो? किस प्रकार के भोज्य पदार्थ शरीर के अनुकूल तथा कौन-से प्रतिकूल हैं अथवा पथ्य-अपथ्य आहार क्या है ? या हितकर व अहितकर आहार क्या है ? आदि प्रश्नों का समाधान हमारे योग के आचार्यों ने विस्तृत रूप से अपने यौगिक ग्रन्थों में दिया है । जिसे उन्होंने मिताहार, पथ्य या हितकर भोजन बताया है साथ ही उन्होंने अपथ्य, अहितकर व वर्जित आहार का वर्णन भी विस्तारपूर्वक किया है ।

### हठप्रदीपिकानुसार आहार निरूपण

हठयोग आचार्य स्वामी स्वात्माराम अपने ग्रन्थ हठप्रदीपिका में आहार सम्बन्धो चर्चा का वर्णन करते हुए योगमार्ग में आरूढ़ साधकों के लिए मिताहार का निर्देश करते हुए कहते हैं-सुस्निग्ध तथा मधुर भोजन, भगवान को अर्पित कर, अपने पूर्ण आहार का चतुर्थांश कम खाय जाये उसे मिताहार कहते हैं ।<sup>11</sup>

मिताहारी साधक एक वर्ष या इससे कुछ अधिक समय में योग में सिद्धि प्राप्त कर लेता है ।<sup>12</sup> आगे अपथ्य व अहितकर का वर्णन स्वामी स्वात्माराम करते हैं-कटु, अम्ल, तीखा, नमकीन, गरम, हरी शाक, खट्टी भाजी, तेल, तिल, सरसों, मद्य, मछली, बकरे आदि का मांस, दही, छाँछ, कुलथी, कोल (बैर) खल्ली, हिंग तथा लहसुन आदि वस्तुएं योगसाधकों के लिए अपथ्यकारक कहे गये हैं ।<sup>13</sup>

अपथ्य का अर्थ है जिन भोज्य पदार्थों का आसानी से पाचन ना हो सकें ।

पथ्य का अर्थ है सुगमता से पचने वाले भोज्य पदार्थ । हितकर का अर्थ है जो भोज्य पदार्थ व्यक्ति के शरीर के लिए लाभकारी हो व अहितकर का अर्थ है जो भोज्य पदार्थ व्यक्ति के शरीर के लिए हानिकारक हो उन्हें अहितकर की श्रेणी में रखा गया है ।

अहितकर भोजन को बताते हुए हठप्रदीपिका कहती है कि फिर से गर्म किया गया, रूखा, अधिक नमक या खटाईवाला, अपथ्यकारक तथा उत्कट अर्थात् वर्जित शाकयुक्त भोजन अहितकर है । अतः इन्हें नहीं खाना चाहिए ।<sup>14</sup> आगे पथ्यकारक भोजन का निरूपण

करते हुए कहा है-गेहूँ, चावल, जौ, साठी, चावल जैसे सुपाच्य अन्न, दूध, घी, खाँड, मक्खन, मिसरी, मधु, सूँठ, परवल जैसे फलादि, पाँच प्रकार के शाक (जीवन्ती, बथुआ, चौलाई, मेघनाद तथा पुनर्नवा), मूँग आदि तथा वर्षा का जल । इन्हें पथ्यकारक भोजन क अन्तर्गत रखा गया है ।<sup>15</sup> पाँच प्रकार के शाक की बात आचार्य निघन्टु भी करते हैं-सभी प्रकार के शाक आँखों के लिए लाभदायक है, वे ये हैं -

**जीवन्ती,**

**बथुआ, चौलाई, मेघनाद तथा पुनर्नवा ।<sup>16</sup>**

अन्त में स्वामी स्वात्माराम योगाभ्यासी के लिए पुष्टिकारक, सुमधुर, स्निग्धा, गाय के दूधा की बनी वस्तुएं, धातु को पुष्ट करने वाला, मनोनुकूल तथा विहित भोजन करने का निर्देशन करते हैं ।<sup>17</sup> इस प्रकार स्वामी स्वात्माराम मिताहार, पथ्य, अपथ्य व हितकर तथा अहितकर भोजन का वर्णन किया करते हैं ।

**आचार्य चरक के अनुसार -**

आचार्य चरक ने मात्र, काल, क्रिया, भूमि/देश, देह व दोष इन छः को पथ्य या अपथ्य का नियामक घटक माना है ।<sup>18</sup> अर्थात् इन भावों के प्रभाव में हिताहार भी अहिताहार में तथा अहिताहार भी हिताहार में परिवर्तित हो जाता है । आचार्य चरक कहते हैं-यद्यपि कुछ द्रव्य स्वभावतः अपथ्य होते हैं । अतः स्वभाव से ही अपथ्य पदार्थों के अतिरिक्त अन्य औषधि-अन्न विहारादि भावों का उपरोक्त मात्र-कालादि का विचार करके प्रयोग करने से सिद्धि प्राप्त होती हैं।<sup>19</sup>

**घेरण्ड संहिता के अनुसार आहार निरूपण :-**

घेरण्ड ऋषि ने आहार का वर्णन करते हुए सर्वप्रथम मिताहार का उपदेश किया है-जो मिताहार के बिना ही योगारंभ का आचरण करता है, वह अनेक रोगों वाला होता है, और उसे कोई भी योग सिद्धि नहीं होता ।<sup>20</sup> शुद्ध, मधुर, स्निग्ध भोजन, आधे उदर ही प्रेमपूर्वक योगारंभ समय संयमित आहार को विद्वानों ने मिताहार कहा है ।<sup>21</sup>

घेरण्ड ऋषि ने आहार को दो भागों में बांटा है - ग्राह्याहार अर्थात् ग्रहण करने योग्य आहार व अग्राह्याहार अर्थात् न ग्रहण करने योग्य आहार।

**ग्राह्याहार**

घेरण्ड ऋषि कहते हैं कि योगारंभ के समय शाली चावल, जौ का अन्न, गेहूँ अन्न, मूँग, उड़द या चना, स्वच्छ और भूसी रहित भोजन, परवल, कटहल, कंकोल, करेला, अरबी, ककड़ी, केला, गूलर, चौलाई, आमरंभ, कच्चीगहर, केला का दण्ड और जड़, बैंगन, मूली आदि औषधि, कच्चा शाक, मौसमानुसार शाक, परवल का शाक, बथुआ, हिमलोचिका शाक, इलायची, चमेली, लोंग, बलकारक दवा, जामुन, जाम्बूल हरड़, खजूर व शीघ्र पकने वाली

## संगोष्ठी सौरभ

प्रिय, स्निग्धा, धातुओं को पुष्ट करने वाले भोजन को अन्न आधा उदर ही खायें, तृतीय भाग अर्थात् उदर के एक चौथाई भाग में जल पीयें तथा चौथाई भाग को वायु संचरण के लिए छोड़ देना चाहिये ।<sup>22</sup> इस प्रकार से ग्रहण करने योग्य आहार का वर्णन किया गया है ।

### अग्राह्याहार

अग्राह्याहार को बताते हुए घेरण्ड संहिता कहती है - कटु, खट्टा, नमक, तीखा, भुने हुए, दधि, मट्ठा, बुरे शाक, मंदिरा, छुहारा, कटहल, कुलथी, मसूर, पाण्डू का शाक, पेठा, शाक दण्ड, घीया, बैर, कैथ, कांटे वाली बेल, पलाश, कदम्ब, निम्ब, जम्बीर, लकुच, लहसुन, विष, कमरख, प्रियाल, हींग, गोभी, स्त्री, अग्नि आदि पथ्यों का सेवन, मक्खन, घी, शक्कर, गुड़, गन्ना, पाँच प्रकार के केले, नारियल, अनार, सोंफ, मुनक्का, नवनी, आँवला और अम्लरस व काठिन्यपूर्ण, बुरी, पापकारिणी, बासी, अतिठन्डा, अतिगर्म भोजन योगी के लिए वर्जित है ।<sup>23</sup> यहा पर विशेष बात यह है कि घेरण्ड ऋषि ने कुछ पथ्य कारक आहार जैसे कि मक्खन, घी, शक्कर, गुड़ आदि का भी सेवन योगारंभ समय वर्जित कहा है जब कि स्वामी स्वात्माराम ने इन्हे सेवनीय कहा है।

### श्रीमद्भगवद्गीता में आहार का निरूपण :-

भगवान श्री कृष्ण गीता में आहार का निरूपण करते हुए तीन प्रकार के आहार का वर्णन करते हैं ।<sup>24</sup> सात्विक आहार, राजसिक आहार व तामसिक आहार ।

१. **सात्विक आहार** :- आयु, सात्विक वृत्ति, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति की वृद्धि करने वाले रसीले, स्निग्ध, शरीर में रस आदि के साथ घुलमिल कर लम्बे समय तक स्थिर रहने वाले, मन को प्रसन्नता प्रदान करने वाले आहार सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं ।<sup>25</sup>

२. **राजसिक आहार** :- कटु अर्थात् चरपरे, खट्टे, लवण युक्त, अतिउष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष और विपाकावस्था में अम्लता बढ़ाकर जलन पैदा करने वाले अचारादि, दुख, शोक और रोग उत्पन्न करने वाले आहार रजोगुणी अर्थात् राजस व्यक्ति का प्रिय होता है ।<sup>26</sup>

३. **तामसिक आहार** :- अधापका, नीरस, दुर्गन्धित, बासी, झूठा एवं अपवित्र भोजन तामस अर्थात् तमोगुणी व्यक्ति को प्रिय होता है ।<sup>27</sup> इस प्रकार तीन प्रकार के आहार का निरूपण गीता करती है। तामसिक व राजसिक आहार अपथ्य व अहितकर भोजन है और सात्विक आहार को सेवनीय व पथ्य, ग्राह्याहार भी श्रेणी में रखा जाता है ।

### वशिष्ट संहिता में आहार का वर्णन :-

## संगोष्ठी सौरभ

महर्षि वशिष्ठ प्रथम अध्याय में मिताहार का वर्णन करते हुए कहते हैं - सन्यासियों के लिए आठ ग्रास (कौर) वानप्रस्थों के लिए सोलह ग्रास, गृहस्थों के लिए बत्तीस ग्रास तथा बह्वचारियों के लिए यथेष्ट अर्थात् आवश्यकतानुसार । इससे अतिरिक्त लोगों के लिए पूर्ण आहार से कम, इसे मिताहार करते हैं ।<sup>28</sup> इस प्रकार महर्षि वशिष्ठ आश्रमावस्था के अनुसार आहार का निर्देशन करते हैं ।

### हठरत्नावली के अनुसार आहार का वर्णन :-

हठरत्नावली में योगी श्री निवास आहार का निरूपण करते हुए पथ्य, अपथ्य व मिताहार का वर्णन करते हैं ।

#### पथ्याहार :-

योगी को गेहूँ, चावल, जौ, दूध, घी, स्निग्ध, मक्खन, मीठा, शहद, पाँच प्रकार के पत्ते वाली सब्जियाँ, हरा चना व वर्षा का जल सेवनीय है ।<sup>29</sup>

#### अपथ्याहार :-

कड़वा, खट्टा, तीखा, नमकीन, गर्म, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, सरसों, तिल, मछली, मदिरा, मांस आदि को अपथ्य आहार कहा है ।<sup>30</sup> इसके बाद योगी के लिए आहार का निदर्श किया गया है - मीठे, दूध से बने पौष्टिक पदार्थ, पोषण, स्वादिष्ट आदि को एक चौथाई खाना चाहिए ।<sup>31</sup> अन्त में योगी श्रीनिवास मिताहार करने की तथा त्यागने योग्य पदार्थ त्यागने की बात करते हैं ।<sup>32</sup>

### हठयोग मंजरी के अनुसार आहार का वर्णन :-

गुरु गोरक्षनाथ के शिष्य सहजानंद अपने ग्रन्थ हठयोग मंजरी में आहार के विषय को प्रतिपादित करते हुए पथ्य व अपथ्य आहार का वर्णन करते हैं ।

#### अपथ्य भोजन :-

कड़वे, तीखे, नमकीन, सरसों, राई, बकरे का मांस, उड़द, कुल्थी, हींग, लहसुन, बासी, कसैला, मोठ, मसूर<sup>33</sup> आदि भोजन को शत्रु के समान कहा है ।

#### पथ्य भोजन :-

(सात्विक आहार) सात्विक आहार के विषय में कहा है कि सात्विक आहार करने से सात्विकता ही आती है और रजोगुण व तमोगुण खत्म हो जाते हैं ।<sup>34</sup> गेहूँ, साठी, चावल, मूंग, घी, खांड, शहद, गाय का दूध, सौंठ, परवल, चौलाई, हरड़, त्रिफला, स्निग्धा भोजन, आदि को पथ्य आहार (सात्विक) में रखा गया है ।<sup>35</sup>

### गोरक्षसंहिता के अनुसार आहार चर्चा :-

## संगोष्ठी सौरभ

योगी गोरक्षनाथ अपनी गोरक्ष संहिता में आहार चर्चा को योगी की चर्चा में रखते हुए कहते हैं कि लवण और अम्ल रसों से युक्त भोजन न करें<sup>36</sup> वरन् दूध पीकर ही चौथाई पेट को जल से भरना और शेष चौथाई भाग खाली रखना चाहिए यही मिताहार है।

### योगकुण्डल्युपनिषद् में आहार चर्चा :-

योगकुण्डल्युपनिषद् में भी मिताहार की चर्चा है - हे गौतम ! अब तुम्हें मिताहार का लक्षण कहता हूँ, सादर सुनो ! सबसे पहले साधक को चाहिए कि वह स्निग्ध एवं मधुर भोजन (आधा पेट ) करें, (उसका आधा भाग पानी) एवं चौथाई भाग हवा के लिए खाली रखें । इस तरह से शिव के निमित्त भोजन करने को मिताहार कहते हैं ।<sup>37</sup>

### गोरक्षशतकमानुसार आहार :-

गोरक्षशतकम ग्रन्थ में कटु, अम्ल तथा लवण युक्त भोजन का त्याग कर दुग्धा प्रधान भोजन करने का निर्देश दिया है ।<sup>38</sup>

### शिवसंहिता में आहार निरूपण :-

शिव संहिता में भगवान शिव तृतीय पटल में योगमार्ग में विघ्नकारक व अतिनिषिद्ध बातों के उल्लेख में खट्टे, रूखे, तीखे, नमकीन, सरसो से बने पदार्थ, कडुवा, तेल व जलन पैदा करने वाले पदार्थों को अति निषिद्ध व विघ्नकारक कहा है ।<sup>39</sup>

आगे योग मार्ग में शीघ्र सफलता प्राप्त करने के लिए भगवान शिव घी, दूध, मीठा भोजन, चूनारहित पान, कपूर, छिलका रहित पदार्थ, स्निग्धा भोजन का निर्देशन योगी के लिए करते हैं ।<sup>40</sup> इस प्रकार से भगवान शिव ने अपने अपथ्य आहार को अतिनिषिद्ध व पथ्य आहार को योगमार्ग में शीघ्र सफलता प्राप्त करवाने वाला बताया है ।

### निष्कर्ष :-

प्रस्तुत शोध द्वारा हमने आहार की विस्तृत चर्चा द्वारा जाना कि किस प्रकार मिताहार की महता को योग के सभी आचार्यों, ऋषियों ने अपने ग्रन्थों में इसका प्रतिपादन किया है । किस प्रकार से पथ्य आहार को ही हितकर आहार बताकर उसके सेवन का निर्देशन करते हुए अपथ्य आहार को शरीर के लिए अहितकर आहार बताते हुए उसको वर्जित बताया है ।

प्रायः सभी योग आचार्यों व ऋषियों ने मिताहार, पथ्य, अपथ्य को एक प्रकार से ही परिभाषित करके अपनी अनन्त ज्ञान परम्परा का परिचय दिया है ।

आवश्यकता केवल इनके निर्देशन को व्यवहार में लाने की है।

### सन्दर्भ सूची :-

1. 'आहारसम्भवं वस्तु रोगाश्चहारिसम्भवाः ।' (च. सू. 28:45) ।

2. 'त्रय उपस्तम्भा इत्याहारः, स्वप्नो, ब्रह्मचर्यमिति' । (च. सू. 11:13) ।
3. आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारकः आयुस्तेजः समुत्साहस्मृत्योजोऽग्निविवर्धनः ॥ (सु.चि. 24:68)
4. डॉ. अनीता सिंह, आहार एवं पोषण विज्ञान, पृ. 8 ।
5. डॉ. अनीता सिंह, आहार एवं पोषण विज्ञान, चैम्बर्स डिक्शनरी, पृ. 8 ।
6. काउन्सिल ऑफ फूड्स एण्ड न्यूट्रीशन ऑफ द अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन ।
7. डॉ. अनीता सिंह, आहार एवं पोषण विज्ञान, पृ. 9 ।
8. उपर्युक्त, पृ. 10 ।
9. उपर्युक्त पृ. 11 ।
10. उपर्युक्त पृ. 11 ।
11. सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थाशिविवर्जितः ।  
भुज्यते शिवसंप्रीत्यै मिताहारः स उच्यते ॥ (ह.प्र. 11 58)
12. ब्रह्मचारी मिताहारी त्यागी योगपरायणः।  
अष्टादूर्ध्वं भवेत् सिद्धो नात्र कार्या विचारणा ॥ (ह.प्र. 11 57)
13. कट्वम्लतीक्ष्णलवणोष्णहरीतशाकसौवीरतैलतिलसर्षपमद्यमत्स्यान् ॥ (ह.प्र. 11 59)
14. भोजनमहितं विद्यात् पुनरप्युष्णीकृतं रूक्षम् ।  
अतिलवणमम्लयुक्तं कदशनशाकोत्कटं वर्ज्यम् ॥ (ह.प्र. 11 60)
15. गोधूमशालियवषष्टिकशाभनान्नमक्षीराज्यखण्ड नवनीतासितामधूनि ।  
शुष्ठीपटोलकफलादिकपञ्चशाकं मुद्गादिदिव्यमुदकं च यमीन्द्रपथम् ॥ (ह.प्र. 11 62)
16. शाकं सर्वम चक्षुष्यं चक्षुष्यं शाकपञ्चकम् ।  
जीवन्तीवास्तुमत्स्याक्षी मेघनाद पुनर्नवा । (आचार्यनिघण्टु 111 51 5)
17. पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं धातुप्रपोषणम् ।  
मनोभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत ! ॥ (ह.प्र. 11 63)
18. मात्रकालक्रियाभूमिदेहदोषगुणान्तरम् ।  
प्राप्यतत्ताद्वि दृश्यन्ते ते ते भावास्तथा तथा ॥ (च.सू. 25:45)
19. तस्मात् स्वभावो निर्दिष्टस्तथा मात्रादिरश्रयः ।  
तदपेक्ष्योभयं कर्म प्रयोज्यं सिद्धिं मिच्छता ॥ (च.सू. 25:46)
20. मिताहारं विना यस्तु योगारम्भं तु कारयेत् ।  
नानारोगो भवेत्तस्य किञ्चिद्योगो न सिद्धचति ॥ (घे.स. 51 16)

21. शुद्धं सुमधुरं स्निग्धं उदराद्धविवर्जितम् ।  
भुज्यते सुरसं प्रीत्या मिताहारमिमं विदुः ॥ (घे.स. 5। 21)
22. (अ) शाल्यन्नं यवपिण्डं वा गोधूमपिण्डकं तथा ।  
मुद्गं माषचणकादि शुभ्रं चतुषवर्जितम् ॥ (घे.स. 5। 17)
- (आ) पटोलं पनसं मानं कक्कोलं च शुकाशकम् ।  
द्राढिकां कर्कटीं रम्भां हुम्बरीं कण्ट कण्टकम् ॥ (घे.स. 5। 18)
- (इ) आमरम्भां वालरम्भां रम्भादण्डं च मूलकम् ।  
वार्ताकी मूलकं ऋषिं योगी भक्षणम चरेत् ॥ (घे. स. 5। 19)
- (ई) बालशाकं कालशाकं तथा पटोलपत्रकम् ।  
पञ्चशाकं प्रशंसी याद्धा स्तूकं हिमलोचिकाम् ॥ (घे.स. 5। 20)
- (उ) एलाजातिलवङ्गं च पौरुषं जम्बु जाम्बुलम् ।  
हरीतकीं च खर्जूरं योगी भक्षणमाचरेत् ॥ (घे.स. 5। 27)
- (ऊ) लघुपाकं प्रियंस्निग्धं तथा धातुप्रपोषणम् ।  
मनोऽभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत् ॥ (घे.स. 5। 28)
- (ए) अन्नेन पूरयेदर्धां तो येन तु तृतीयकम् ।  
उदरस्य तुरीयाशं संरक्षेद्वायुचारणे ॥ (घे.स. 5। 22)
23. (अ) कट्वम्लं लवणं लिक्तं भृष्टं च दधि तक्रकम् ।  
शाकोत्कटं तथा नघं तालं च पनसं तथा ॥ (घे.स. 5। 23)
- (आ) कुलत्थं मसूरं पाण्डुं कूष्माण्डं शाक दण्डकम् ।  
तुम्बीकोलकपित्थं च कष्टबिल्वं पलाशकम् ॥ (घे.स. 5। 24)
- (इ) कदम्बं जम्बीरं निम्बलकुचं लभुन विषम् ।  
कामरङ्गं प्रियालं च हिङ्गुशाल्मलीकेमुकम् ॥  
योगारम्भे वर्जयेत्पथ्यं स्त्रीवद्धिसेवनम् ॥ (घे.स. 5। 25)
- (ई) नवीनीतं घृतंक्षीरं गुड शक्रादि चैक्षवम् ।  
पङ्चरम्भां नारिकेलं दाडिमंसिवासरम् ।  
द्राक्षां तु नवनीं धात्रीं रसमम्लं विवर्जितम् ॥ (घे.स. 5। 26)
- (उ) काढिन्यं दुरितं पूतिमुष्णं पर्युषितं तथा ।  
अतिशीतं चातिचोष्णं भक्ष्यं योगी विवर्जयेत् ॥ (घे.स. 5। 29)
24. आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः । (गीता 17। 7)
25. आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।

## संगोष्ठी सौरभ

रस्याः स्निग्धाः स्थिराहृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः ॥ (गीता 17। 8)

26. कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।

आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ (गीता 17। 9)

27. यात यामं गतरसं पूर्तिं पर्युषितं च यत् ।

उच्छिष्टमपि चामेधयं भोजनं तामसप्रियम् ॥ (गीता 17। 10)

28. अष्टौ ग्रासा मुनेरूक्ताः षोडशारण्यवासिनाम् ।

द्वात्रिंशच्च गृहस्थस्य यथेष्टं ब्रह्मचारिणाम् ।

उक्तमेतन्मिताहारमन्येषामल्यभोजनम् ॥ (व.स. 1। 50)

29. गोधूमशालियवषष्टिकशोभनान्नं क्षीराज्यमण्ड नवनीत सितामधूनि ॥

शुष्ठीपटोलफलपत्रज पञ्चशाकं मुद्गादिदिव्यमुदकं च यमीन्द्र पथ्यम् ॥

(ह.र. 1। 71)

30. कट्वम्लतीक्ष्ण लवणोष्णहरीतशाकसौवीरतैलतिलसर्षपमत्स्यमधम् ।

अजादि मासदधितक्रकुलत्थकोद्रपि.याकहिङ्गुलशुनाधमपथ्यमाहुः ॥ (ह.र. 1। 72)

31. श्रेष्ठं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं धातुप्रपोषणम् मनोऽभिलषितं योग्यं चतुर्थांशविवर्जितम्

शिवर्पितं च नैनेधं योगी भोजनमाचरेत् ॥ (ह.र. 1। 75)

32. अथमेव मिताहारी कदन्नेन विवर्जित ॥ (ह.र. 1। 76)

33. (अ) कडुवो तीक्ष्ण ल्यागे लौण । हरी साक ते लियावे कोण ॥

सरसों राई तेल मट् मच्छा । बकरी आदि दे मांसन भच्छा ॥

(ह.म. 2। 16)

(आ) उड़द कुलथ की धानी पाक । हींग लहसुन कांदा को साग ॥

उन्हीं रूपो बासी कसौलौ । मोठ मसूर चणौ दुख देलौ ॥

(ह.म. 2। 17)

34. सात्विक आहार सात्विक उपजावे । रज तम के गुण सभै मिटावै ॥

(ह.म. 2। 21)

35. (अ). गेहूँ जव गरडा को भात । साठी चावल मूंग मिलात ॥

घृत खांड मधू तै सानै । गौ का दूधा पीवे मन माने ॥ (ह.म. 2। 22)

(आ.) सूठ पटोल परवल चौलाई । हरडें पाक त्रिफला खाई ॥

चीकनी भोजन जोगी पावे । ताते कोठे मल न रहावे ॥ (ह.म. 2। 23)

36. कट्वम्लललवणत्यागी क्षीरभोजनमाचरेत् । (गो.स. 1। 52)

37. (अ). एतेषां लक्षणं वक्ष्ये शृणु गौतम सादरम् ।

## संगोष्ठी सौरभ

---

सुस्निग्धा मधुराहारश्चतुर्याशिविवर्जितः ॥

(योग.कुण्ड 1। 3)

(आ) भुज्यते शिवसंप्रीत्यै मिताहार स उच्यते । (योग.कुण्ड. 1। 4)

38. कट्वम्ललवणत्यागी क्षीर भोजनमाचरेत् ॥ (गो.शतकम् 50)

39. आम्लं रूक्षं तथा तीक्ष्णं लवणं सार्षपं कटुम् ।

बहुलं भ्रमणं प्रातः स्नानं तैलं विदाहकम् ॥ (शिव संहिता 3। 35)

40. घृतं क्षीरं च मिष्ठानं ताम्बूलं चूर्णवर्जितम् ।

कर्पूरं निष्ठुषं मिष्टं सुमठं सूक्ष्मरूध्रकम् ॥ (शिव संहिता 3। 39)

योग विशेषज्ञ,  
सी.ई.सी. ( यू.जी.सी ),  
नई दिल्ली

★★★

मानवीय संवेदना के कथाकार : फणीश्वरनाथ रेणु

फणीश्वर नाथ रेणु के कथा-साहित्य का प्रारंभ 1936 के आसपास से माना जाता है। उनकी कुछ कविताएँ एवं कहानियाँ 'बट बाबा' के पहले भी छप चुकी थी लेकिन उनके लेखन को 'बट बाबा' कहानी से अधिक प्रसिद्धि मिलती है। इसका प्रकाशन 'साप्ताहिक विश्वमित्र' के 27 अगस्त, 1944 के अंक में हुआ था।

'बट बाबा' रेणु की पहली कहानी होने के साथ ही इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इस कहानी में रेणु के भावी कथाकार के बीज तत्त्व मौजूद थे। रेणु ने अपनी इस छोटी सी कहानी के माध्यम से संपूर्ण गाँव के समग्र जीवन चर्या को उभारकर रख दिया है। 'बट बाबा' गाँव वालों के लिए सिर्फ एक पेड़ नहीं बल्कि वयोवृद्ध व्यक्ति की तरह हैं। जो उन्हें दुःख और विपत्ति के दौरान ढाँढस बँधाता हुआ, जीवन के प्रति घनघोर आस्था को विकसित करता है। 'बट बाबा' रेणु के लिए ऋषितुल्य थे। उन्होंने अपने आत्म संस्मरण 'ईश्वर रे मेरे बेचारे' में लिखा है - 'अपने संबंध में कुछ लिखने की बात मन में आते ही मन के पर्दे पर एक छवि 'फेड इन' हो जाया करती है : एक महान् महीरूह..... ऋषि-तुल्य विराट वनस्पति फिर इस छवि के ऊपर 'सुपर इंपोज' होती है दूसरी तस्वीर : जटाजूटधारी बाबाजी की गोद में किलकता एक नन्हा शिशु ओर तब अपने बारे में कुछ लिखने की बात मन से दूर हो जाती है क्योंकि इस वृक्ष को बाद देकर अपनी कहानी लिख पाना, मेरे लिए असंभव है।' (भूमिका : प्राणों में घुले हुए रंग - फणीश्वर नाथ रेणु, पृष्ठ - 9-10) रेणु आगे लिखते हैं - 'बट बाबा' को हमने पेड़ नहीं समझा देव ही समझा सदा ठीक उसी तरह मलेरिया को सिर्फ बुखार नहीं पिशाच मानता रहा। जूड़ी-ताप-तितली की एक मशहूर पेटेंट दवा के विज्ञापन में 'मलेरिया-पिशाच' की तस्वीर छपी रहती थी। पाँच मुँहवाला विकराल पिशाच अट्टहास करता हुआ, चारों ओर अस्थि पंजर, मुंडा और हड्डियों के ढेर बिखरे हुए। (भूमिका : प्राणों में घुले हुए रंग - फणीश्वरनाथ रेणु, पृष्ठ - 10)

रेणु ने 'बट बाबा' कहानी के प्रकाशन के बाद जब दादी को यह कहानी सुनाई थी, तो उनकी दादी ने कहा था 'बट बाबा' की महिमा लिखकर तुमने समझो कि अपने पुरखों को पानी दिया है। तुमने सारे गाँव के लोगों की ओर से 'बट बाबा' की समाधि पर पहला फूल चढ़ाया। (भूमिका : प्राणों में घुले हुए रंग - फणीश्वरनाथ रेणु, पृष्ठ - 10)

रेणु की दूसरी कहानी 'पहलवान की ढोलक' है। संभवतः किसी पहलवान पर लिखी गई हिंदी की यह पहली कहानी है। इस कहानी में पहलवान के दाँव पेच ढोलक की विभिन्न ध्वनियों के अर्थ का बड़ा ही सूक्ष्म और जीवंत चित्रण हुआ है। जिसका एक

मुद्दा इस प्रकार है । चाँद सिंह और लुट्टन सिंह के बीच कुश्ती हुई और चाँद सिंह, लुट्टन की गर्दन पर कुहनी डालकर उसे चित्त करने की कोशिश कर रहा था तभी राजमत और बहुमत के साथ-साथ बादल सिंह अपने शिष्य को उत्साहित कर रहे थे । साथ ही चांद को शाबाशी दे रहे थे । लुट्टन के पक्ष में सिर्फ ढोल की आवाज थी जिसके ताल पर वर अपनी शक्ति और दाँव-पेच की परीक्षा ले रहा था । अपनी हिम्मत को बढ़ा रहा था । अचानक ढोल की एक पतली आवाज सुनाई पड़ी..... धाक-धिना, तिरकट-तिना, धाक-धिना, तिरकट-तिना ।

ढोल के इस स्वर को सुनते ही लुट्टन समझ जाता है कि ढोल कह रहा था - 'दाँव काटो बाहर हो जाओ ।' (पहलवान की ढोलक - पृष्ठ 23) लुट्टन ठीक वैसा ही करता है । लोगों के देखते ही देखते लुट्टन चांद की गिरफ्त से बाहर निकल आया और चांद को उठाकर पटक दिया । साथ ही जीत को अपने नाम कर लिया ।

इतना ही नहीं मलेरिया से भयभीत पूरे गाँव के लोगों तथा मृत्यु से जूझते लोगों में पहलवान की ढोलक की चटाक्-चट्-धा यानी उठाकर पटक दे की ताल, उष्मा और जीवंतता का संचार करती रहती है ।

इस प्रकार अंत में 'बट बाबा' की तरह पहलवान की मृत्यु गांव वालों की आस्था, विश्वास और संघर्षों का ही मानों क्षय होना हो । ..... रेणु 'बट बाबा' और 'पहलवान की ढोलक' कहानी में पुरानी परंपराओं, मूल्यों, आस्थाओं की टूटन को उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में पकड़ते हैं ।

एक कलाकार के लिए उसके जीवन में उसके रहन-सहन, खान-पान आदि का कोई महत्व नहीं होता । वह तो हमेशा अपनी कला को तराशने की चिंता में डूबा रहता है । और समाज की भी उससे यही अपेक्षा रहती है कि उसके कार्य समाज के अनुकूल रहें।

हमारे समाज का एक वर्ग बड़ा स्वार्थी और धन लोलुप किस्म का होता जा रहा है । जिसके समक्ष धन के अतिरिक्त किसी व्यक्ति या वस्तु का कोई महत्व नहीं होता । यहाँ तक कि वह जिसकी बवौलत धन के पहाड़ गढ़ता है उसके प्रति भी उसकी संवेदनाएँ मर चुकी हैं और वह उसी को मूर्ख समझने लगता है । यह अलग बात है कि कलाकार के लिए पैसे का कोई मूल्य नहीं होता । वह तो जीवन में इतना ही धन चाहता है जिससे उसका जीवन सुचारू रूप से चल सके ताकि वह लगातार अपनी कला को तराशने में जुटा रह सके । जब वह अपने द्वारा बनाए गए डिजाइनों के संबंध में जानने की उत्कंठा दिखाते हुए हैदर साहब से पूछता है जिन्होंने उसके द्वारा निर्मित डिजाइनों से अकूत धन कमाया है । उनके चेहरे की हवाईयाँ उड़ जाती हैं । लेकिन जब वह स्पष्ट तौर पर अपनी उत्कंठा का

कारण बताते हुए कहता है - 'स्पैक्यूलेशन' अर्थात् उसकी स्टडी कितने अंशों में सफल रही ताकि वह इसी के बल पर वर्तमान संसार का भविष्य जान सकेगा आदि । (कलाकार पृष्ठ 29) यह सुन हैदर साहब की जान में जान आती है ।

एक बार हैदर साहब के दामाद जा 'इस्लामिया यूनिवर्सिटी' में इतिहास के रिसर्च स्कॉलर थे तशरीफ लाए थे । तभी उनका साबका शरदेंदु अर्थात् उसी कलाकार से होता है । इसी दौरान बात करते हुए वे उसकी कला से भी परिचित होते हैं । परिणामतः उनकी हैरानों का ठिकाना नहीं रहता और वे तपाक से सलाह दे बैठते हैं कि आप जैसे कलाकारों की यूनिवर्सिटी को तलाश है और उनके मुँह से सहज ही निकल पड़ता है ..... 'अम्मा आप तो खुदखुशी कर रहे खुदखुशी ।' (कलाकार पृष्ठ 30) यह बात हैदर साहब को बिलकुल भी नहीं भाई बल्कि वे मन ही मन अपने दामाद को ही कोसने लगते हैं ।

कलाकार के लिए उसकी अपनी वेशभूषा का कोई महत्व नहीं होता है बल्कि वह तो प्रकृति के सानिध्य में रहकर प्रकृति के तत्त्वों से कुछ ना कुछ सीखता रहता है । इतना ही नहीं वह चाहे हाट बाजार से गुजर रहा हो अथवा किसी अन्य जगह से उसे वहाँ भी सिर्फ वही चीजें नजर आती हैं जिन पर वह अपनी कलाओं को व्यक्त कर सकें। वह लगातार इसी धुन में घूमता फिरता रहता है जिसके परिणाम स्वरूप उसके ज्ञान में लगातार वृद्धि होती है और वह किसी नई कला को जन्म देने में सक्षम हो जाता है । इसी से संबंधित एक वाक्य इस प्रकार है । वह जब बाजार से गुजर रहा होता है तो उसे कुछ युवतियाँ चूड़ियों की दुकान पर दिखाई देती हैं जो उन्हें खरीदने के लिए बड़ी आतुर दिखती हैं । उसे याद आता है कि - यह कॉलेज की लड़कियाँ हैं । पतली-पतली मिर्जापुरी चूड़ियों का खब्ब सवार है । पहनो भाई ! कौन समझाए तुम्हें ! किसी सिनेमा अभिनेत्री ने इन चूड़ियों को पहन लिया उनके हाथों में अच्छी लगी बस इन लोगों के सिर पर पागलपन सवार हुआ जरा भी सोचने समझने की । (कलाकार, पृष्ठ - 31) इस प्रकार आज के युवाओं में बाजार का जो प्रभाव हावी दिखाई देता है । रेणु ने अपने काल में उसे भाँप लिया था । आज हम बाजार की गिरफ्त में पूरी तरह जकड़ चुके हैं । लेकिन कलाकार शरदेंदु पर इसका कोई प्रभाव नहीं दिखाई देता ।

शरदेंदु की इस दशा का कारण उस समय समझ में आता है जब उसका मित्र माधव उससे पूछता है कि, - 'माँ और लता दीदी और तुम्हारे छोटे भाई का नाम भूल रहा हूँ । सब कुशल तो है ।' (कलाकार, पृष्ठ 33) और वह एक छोटा सा उत्तर देता है 'सब शेष..... सब शेष.....।' (कलाकार, पृष्ठ 33) अर्थात् रेणु इस बात की ओर संकेत करते हैं कि जीवन तभी सुखमय बन सकता है जब हम अपने परिवार के साथ मिलजुल कर रहे

। अपने लोगों के अभाव में जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जाता है । आज अपने कॉलेज के मित्रों माधव और मधु से मिलने पर शरदेंदु के जीवन में फिर से सजीवता का संचार होता है और 'वह आधी रात को आनंद विभोर होकर विहाग अलापने लगता है ।' (कलाकार, पृष्ठ 34)

'रखवाला' कहानी एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो समस्त गांव के लोगों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहता है वह अपनी कर्मठता के लिए पूरे गांव में जाना जाता है लाल बहादुर अपने कामों से समस्त गांव के लोगों का विश्वास जीत लेता है । ..... इसलिए भौजी कहती है .... 'उसी दिन से वह साथ रहने लगा काम करने में तो वह भूत है भूत । जब तक जाकर हाथ न पकड़ो, काम नहीं छोड़ने का । आज तीन साल से किसी के खेत में ऐसी फसल नहीं देखी । वह अपने खेतों की ओर देखती । लहलहाते पौधे, मनमोहक हरियाली..... कितना सुंदर । (रखवाला, पृष्ठ 37) यदि व्यक्ति अपने कार्यों को पूरी निष्ठा और लगन के साथ करता है तो निश्चित रूप से उसकी मेहतन रंग लाती है और वह उत्तरोत्तर विकास के पथ पर आगे बढ़ता चला जाता है । रेणु की यह कहानी लीलाधर मंडलोई की 'तताँरा वामीरों को कथा' की याद दिलाती है ।

'प्राणों में घुले हुए रंग' नामक कहानी के माध्यम से रेणु यह बताने का प्रयास कर रहे हैं कि प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चों से ऊँची तालीम की अपेक्षा करते हैं । इसी के परिणाम स्वरूप इस कहानी का डॉक्टर, डॉक्टर बन जाने के पश्चात् अपनी सहेली मिस चैटर्जी तक से सीधे-सीधे बातें नहीं कर पाता है । पद की मर्यादा को बनाए रखने के लिए उसे उससे दूरी बनाकर रखनी पड़ती है । किन्तु उसका यह दोहरा व्यवहार उसकी सहेली चटर्जी को पसंद नहीं आता है जिसके चलते वह एक दिन ब्रेड नंबर 12 की मरीज बन जाती है । वह अपनी सहेलियों से डॉ. को संदेश भेजती है । डॉ. बाध्य है वह कहता है 'मैंने जाने की उत्सुकता भी कभी प्रकट नहीं की । मैं नहीं गया किन्तु निराश होकर दम तोड़ने के समय उसके ओठों पर जो घृणा की रेखा खिंच आई होगी । उस घृणा-पूर्ण-मुस्कुराहट की कल्पना मैं अवश्य कर लेता हूँ । जब-जब उसकी कल्पना करता हूँ । मेरे चेहरे पर आत्मग्लानि की काली तूलिका फिर जाती है ।' (प्राणों में धुले हुए रंग, पृष्ठ 39)

दूसरी तरफ कुछ समय उपरांत अनाथ डॉ. को गाँव के जमींदार और जमींदारिन से बड़ा स्नेह मिलता है । जिससे वह अपने पुराने दुखों को भूलता चला जाता है । जमींदार को ठीक अवसर की तलाश थी ताकि वे उससे लाभ उठा सकें । मौका पाते ही एक दिन वे डॉ. को अपने घर पर बुलाते हैं और एकांत कोठरी में ले जाकर कहते हैं - मैं उनकी

विधवा भाभी के एकमात्र प्यारे पुत्र भोलानाथ को जहर देकर मार डालू उसे मामूली ज्वर है । यही मौका है । जमींदार साहब के छोटे भाई बद्रीनाथ ठाकुर थे, जिनकी मृत्यु का रहस्य भी उन्होंने कहा । लेकिन डॉ. को यह विश्वास कतई नहीं था कि एक दिन जमींदार साहब के इस प्यार की कीमत उसे इस प्रकार चुकानी पड़ेगी । जमींदार के इस प्रस्ताव को अस्वीकार करने के पश्चात उसे जमींदार के कोप का शिकार बनना पड़ता है । अब जमींदार साहब उसे व उसके 'मातृ औषधालय' को खत्म कर देने की ठान लेते हैं । इसी के चलते वह गांव के सभी लोगों को अपने पक्ष में कर लेते हैं साथ ही इलाज के लिए उसके यहाँ जाने से मना कर देते हैं और जब राधिका की माँ जमींदार की परवाह किए बगैर अपनी बेटी राधिका का इलाज उससे कराने जाती है तो उस पर जमींदार साहब तरह-तरह के लांछन लगाते हैं । जबकि राधिका की माँ एक लम्बे समय से डॉक्टर साहब के परिवार की महरी के बतौर काम करती आयी है । डॉक्टर साहब बचपन से ही उसे चाची कह कर पुकारते आए हैं और जिसकी बेटी उन्हें भैया कहकर पुकारती है । जमींदार ने अपनी जिद के चलते इस रिश्ते को तार-तार कर दिया है । आज जमींदार उन्हीं के बीच अनैतिक संबंध के मुद्दे को उछालता है । इसीलिए राधिका की माँ कहती है.... देखो लल्ला यह सब पानी में आग लगा रहे हैं । बिरादरी में गाँव वालों की पंचायत बैठी थी । पंचायत ने राधिका पर दोषारोपण किया था कि तुम्हारे और राधिका के अनुचित संबंध के फलस्वरूप राधिका को गर्भ रह गया था और तुम सुई देकर गर्भपात..... । (प्राणां में घले हुए रंग, पृष्ठ 41)

आगे इसी कहानी में 'मगहिया डोम' नामक एक खानाबदोश जाति का उल्लेख किया गया है । जिनके औरत, मर्द और बच्चे एक गाँव से दूसरे गाँव में डेरा डालते फिरते हैं मर्द दिन में जंगलों में जाकर गीदड़ों की बोली बोल कर उनका शिकार करते हैं तथा औरत और बच्चे गाँव में जाकर भीख मांगते हैं । इनके इस भीख मांगने के तरीके को भीख मांगना नहीं बल्कि खुराकी वसूल करना कह सकते हैं । इनके इस रवैए को देखते हुए लोग चुपचाप भीख दे देते थे । उनसे बोलने में या तो लोग डरते थे अथवा अपना हेठी समझते थे । जब इसी परिवार के एक सदस्य को हैजा हो जाता है तो डॉ. उसे इलाज के लिए अपने घर ले आता है और बरामदे में लिटाकर 'सेलाइन' देने जा ही रहा था कि तभी जमींदार साहब गांव के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ आ धमके और उसकी बेटी के साथ डॉ. के अनैतिक संबंध का दोषारोपण करते हुए कहने लगते हैं..... 'तुमने तो हद कर दिया । छी: छी: जरा शर्म भी तो हो । एक भद्र परिवार की संतान होकर इस नीच छोकड़ी पर मर रहे हो । तुम्हें अपनी इज्जत की परवाह न हो, लेकिन गांव वालों की इज्जत की तो फिक्र की होतो । छी: छी: ।' (प्राणां में घले हुए रंग, पृष्ठ 45) इससे इस बात का पता

## संगोष्ठी सौरभ

---

चलता है कि उस समय भी जाति को लेकर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं दिखाई देता किंतु अपनी दुश्मनी निकालने के लिए जमींदार डॉ. के समक्ष जाति का मुद्दा उठाकर उसका इलाज करने से मना कर देते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रेणु की भाषा अपने समय की विसंगतियों को समाज के समक्ष रखने में सक्षम है । उनकी कहानियों के प्रसंग समसामयिक प्रसंगों का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं उनके कहने की शैली हमारे समक्ष समसामयिक परिवेश को उकेरकर रख देती है।

अध्यक्ष ( हिन्दी विभाग )

रामनारायण रूईया स्वायत्त महाविद्यालय  
माटुंगा, मुम्बई ।



# स्त्रीवादी समीक्षा : संकल्पना व स्वरूप

डॉ. प्राजक्ता शिन्डे

### प्रस्तावना :

स्त्रीवादी समीक्षा संकल्पना व स्वरूप समजून घेण्याअगोदर स्त्रीवाद म्हणजे काय? स्त्रीवादी चळवळीची भूमिका समजून घेणे महत्वाचे ठरते. मराठी साहित्यामध्ये 1960 नंतर अनेक प्रवाह मराठी साहित्याला येऊन मिळाले. उदा. दलित साहित्य, ग्रामीण साहित्य, मुस्लिम साहित्य आदिवासी साहित्य स्त्रीवादी इत्यादी. 'स्त्रीवाद' ही विचारप्रणाली 1960 नंतरच्या दशकात वेगाने पुढे आली. पुरुषसत्ताक समाजव्यवस्थेत स्त्रीकडे केवळ एक भोगवस्तू म्हणून पाहिले गेले. वेदकाळ सोडता प्राचीन काळापासून स्त्रियांना दुय्यम मानले गेले. तिला दासी, व्यभिचारिणी, एक डोके नसलेली विचारहीन स्त्री असे मर्यादित दुय्यम स्थान दिले. स्त्रियांचे स्वातंत्र्य, शिक्षण, तिचे प्रश्न, सामाजिक व सांस्कृतिक क्षेत्रात तिचा सहभाग आणि पुरुष प्रधान समाजव्यवस्थेपासून तिला मुक्ती यासाठी पाश्चात्य देशात एकोणिसाव्या शतकाच्या उत्तरार्धात आणि भारतात विसाव्या शतकाच्या उत्तरार्धात या स्त्रीवादी विचारसरणीचा उदय झाला.

### स्त्रीवाद संकल्पना :

'स्त्रीवाद म्हणजे स्त्रीच्या दृष्टिकोनातून जीवनाच्या सर्व पैलूंवर टाकलेला दृष्टिक्षेप. स्त्रीवाद ही एक जाणीव आहे. ते एक जीवनविषयक तत्त्वज्ञान आहे. तो एक सैद्धांतिक दृष्टिकोन आहे. त्याचप्रमाणे ती संघटित कृतीसाठी साददेखील आहे. त्यामुळे स्त्री पुरुषांनी स्वतंत्र व्यक्ती म्हणून सन्मानाने जगण्यासाठी सर्व सामाजिक संस्थांचा केलेला पुनर्विचार आणि पुनर्रचना म्हणजे स्त्रीवाद.'

### डॉ. विद्युत भागवत :

स्त्रीवादाची मांडणी देशी पध्दतीने होणे आवश्यक आहे अशी भूमिका विद्युत भागवत यांनी मांडली आहे. त्या म्हणतात, "स्त्रीपुरुषांमधील 'सत्ता' संबंधाची राजकीय जाणीव म्हणजे स्त्रीवाद. हा पर्यायी जीवन शोधण्याचा लढा आहे. स्त्रीवाद म्हणजे स्त्रीमुक्तीवाद नाही. 'स्त्रीमुक्ती' मध्ये स्त्रीला कोणीतरी जखडलेलं गुलाम केलेलं आहे हे गर्भितार्थाने येतं. स्त्रीवादात त्यासह आणखो काही आहे." <sup>12</sup> स्त्रीवादाची व्याप्ती सांगतांना त्या म्हणतात, खाजगी सामाजिक, आर्थिक, राजकीय पातळीवर होणा-या स्त्रियांच्या

दडपणुकीबद्दल जाणीव करणे आणि त्याचबरोबर हया दडपणुकीविरोधी झगडण्याची तयारी असणे म्हणजे स्त्रीवादाचा अंगीकार करणे होय.<sup>3</sup>

**विद्या बाळ :**

“स्त्रीमुक्ती म्हणजे स्त्रीवर ती केवळ एक बाई आहे म्हणून लादलेल्या बंधनापासून मुक्ती. बाईपणापासून माणूसपणापर्यंत तिचा प्रवास व्हावा यासाठीची संधी. स्त्रीजवळ केवळ एका बाईपणापलीकडे, त्या जैविक वस्तुस्थिती पलीकडे, जे काही सामर्थ्य आहे त्याचा शोधा घेण्याची संधी तिला मुक्तपणे मिळणं, शोधातून हाती आलेल्या सामर्थ्याचा पाठपुरावा करून समृद्ध जीवन जगता येणं.”<sup>4</sup>

**होल आणि लेव्हिन :**

“स्त्रीवाद मूलतः जैसे थे वादाला शह देतो. राजकीय, सामाजिक आणि सांस्कृतिक संस्थांना तसेच त्यांच्या विचार करण्याच्या पध्दतीला आणि विचार अभिव्यक्त करण्याच्या रीतीलाही तो मूलभूत प्रश्न विचारतो.”<sup>5</sup>

**मिशेल बॅरेट**

“स्त्रीवाद फक्त पुरुष अथवा स्त्रिया अथवा दोघांना वर्तनात ते जसे आहेत त्यापेक्षा वेगळे बनवितो इतकेच नाही तर त्या दोहोंमधील नाते बदलण्याचा प्रयत्न करतो.”<sup>6</sup>

स्त्रीवादी विचाराने चार गोष्टीवर भर दिला आहे.

1. स्त्रियांचे उत्पादनव्यवस्थेतील कार्य वा भूमिका
2. स्त्रियांची पुनरुत्पादनातील भूमिका
3. पुरुषी वर्चस्वात्मक सामाजिक संस्कृतीमध्ये संस्कार अथवा सामाजिकीकरणातील स्त्रियांची भूमिका
4. लैंगिकतेसंदर्भातील प्रश्न

स्त्रीवादी विश्लेषणात कुटुंबसंस्थेचे विश्लेषण विशेषतः स्त्रियांच्या दडपणुकीसंदर्भात केंद्रस्थानी असते. तसेच विचारप्रणालीचे विश्लेषण हा सुद्धा आधुनिक स्त्रीवादाचा महत्त्वाचा घटक आहे.<sup>7</sup>

फ्रेंच विचारवंत सीमॉन द बोव्हार यांनी ‘द सेकंड सेक्स (1949) या ग्रंथात स्त्री दुय्यम गणली जाण्याची दोन कारणे सांगितली आहेत. एक म्हणजे स्त्रीला मिळालेला दुय्यम दर्जा आणि दुसरे म्हणजे पुरुष आणि पितृसत्ता जेव्हा ‘स्व’ आणि ‘पर’ अशा आपपर-विरोधाची मांडणी करतात तेव्हा स्त्रीचे ‘पर’ म्हणून स्वतंत्र अस्तित्व आकार घेत नाही. तर त्या ‘पर’ चे स्वरूप केवळ न्यूनतादर्शक किंवा अभावदर्शक असते. उदा. पुरुष विचार प्रवण असतात, तर स्त्रिया भावनाप्रवण असतात, असे म्हणताना स्त्रियांमध्ये विचार शक्तीचा

अभाव असतो यावर भर दिला जातो. परंतु दुस-या बाजुने पुरुषांमध्ये भावना शक्तीचा अभाव असतो. यावर भर दिला जात नाही.<sup>8</sup>

अशा प्रकारे स्त्रीवादी संकल्पनेवर प्रकाश टाकला आहे.

### स्त्रीवादाची वाटचाल

स्त्रीवाद ही संकल्पना 1960 नंतर जरी विकसित झाली असली तरी स्त्रीवादात जो स्त्रीपुरुष समतेचा विचार मांडला गेला आहे तो तीनशे वर्षात हळूहळू विकसित व उत्क्रांत होत गेला आहे. इ.स. 1789 मध्ये फ्रेंच राज्यक्रांतीतून पुढे आलेला मानवी हक्कांचा जाहिरनामा स्त्रीवादी विचारांना प्रेरक ठरला. 1790 मध्ये ऑलिंग्टन या लेखिकेने स्त्रियांच्या हक्कांचा जाहिरनामा प्रसिद्ध करून पुरुषांप्रमाणेच स्त्रीलाही एक स्वतंत्र व्यक्ती म्हणून सन्मानाने जगण्याचा हक्क असला पाहिजे अशी मागणी केली. इंग्लंडमध्ये 1792 साली मेरी वुलस्टोन क्राफ्ट यांनी (The Vindication of Woman) या ग्रंथात स्त्रियांच्या हक्कांचे समर्थन करणारी वैचारिक मांडणी केली.<sup>9</sup> स्त्री ही पुरुषांइतकीच विचारक्षम व विवेकी आहे असा विचार मेरी वुलस्टोन क्राफ्ट यांनी मांडला या वैचारिक बैठकीतून स्त्री पुरुषांना समान नागरी हक्क असावेत, शिक्षण व रोजगाराची समान संधी असावी या राजकीय मागण्या पुढे आल्या. 1848 साली अमेरिकेत गुलामगिरीच्या विरुद्ध स्त्रियांच्या हक्कांचा जाहिरनामा घोषित केला. 1890 मध्ये सफेजेट चळवळीने स्त्रियांना मतदानाचा अधिकार असावा अशी मागणी केली. 1920 साली स्त्रियांना मतदानाचा हक्क मिळाला 1869 साली जॉन स्टुअर्ट मिल यांनी 'सब्जेक्शन ऑफ वुमन' या विवाहसंस्था ही स्त्रियांच्या स्वातंत्र्यातील धोंड आहे, याची चर्चा केली आहे.

### पाश्चात्य साहित्यातील स्त्रीवादी लेखन

पाश्चात्य साहित्यातील स्त्रीवादी लेखनाचा विचार करतांना पुढील ग्रंथाचा विचार करावा लागतो. उदा. मार्गरेट फुल्लरच 'वुमेन इन द नाईटीथ सेंच्युरी (1845)', जॉन स्टुअर्ट मिल ह्या विचारवंताचे 'द सब्जेक्शन ऑफ वुमन' (1869), सिमॉन द बोव्हा यांचा 'द सेकंड सेक्स' (1949), व्हर्जिनिया वुल्फ यांचा 'अ रूम ऑफ वन्स ओन' (1919), बेटी फ्रिडन यांचा 'द फेमिनिन मिस्टिक' (1963) कॅट मिलेट यांचा सेक्सुअल पॉलिटिक्स (1970), मेरी वुलस्टोन क्राफ्टचे 'अ इन्डिकेशन ऑफ द राईट्स ऑफ वुमेन' (1972), जर्मन ग्रीअर यांचा 'द फिमेल यूनक' इत्यादी ग्रंथांमधून पुरुषांप्रमाणे स्त्रियांनाही व्यक्तिस्वातंत्र्य असावे असा विचार मांडलेला दिसतो.

घर आणि मातृत्व याला सुरुवातीच्या स्त्रीवादाने नकार दिला. त्यामुळे यालाच जहाल स्त्रीवाद असे म्हटले गेले. पुढील काळात स्त्रीवादाची भूमिका बदललेली दिसते. बेटी फ्रिडन यांनी 'सेकंड स्टेज' या ग्रंथात मातृत्व ही जबाबदारी निसर्गाने स्त्रियांवर टाकलेली आहे आणि

समाजस्वास्थ्य टिकवून ठेवण्यासाठी ती पार पाडणे आवश्यक आहे असा विचार मांडला. यालाच 'मवाळ स्त्रीवाद' असे म्हटले गेले. स्त्रीवादाच्या संकल्पनेत फिमेल (स्त्री) फेमिनिझम (स्त्रीप्राधान्य) आणि फेमिनिष्ट (स्त्रीवादी विचारधारा) या संज्ञांच्या अर्थाला महत्त्व प्राप्त झाले.<sup>10</sup>

### स्त्रीवादी समीक्षा

1960 नंतर मराठी साहित्यात स्त्रीवादी दृष्टीने जोरकसपणे लेखन झाले. तत्पुर्वी 1882 साली ताराबाई शिंदे यांनी 'स्त्रीपुरुषतुलना' नावाचा 42 पृष्ठांचा निबंध लिहिला. हा निबंध स्त्रीमुक्तीचा मूलमंत्रच ठरला. ताराबाईंनी जी स्त्री व पुरुषांच्या गुणांची तुलना केली आहे, ती अतिशय जहाल होती. पुरुषप्रधान व्यवस्थेने स्त्रीयांवर जे दोष लावले ते स्त्रीयांपेक्षा पुरुषांतच कसे जास्त आहे हे सप्रमाण सिद्ध केले आहे. हे करतांना त्यांनी तत्कालीन ग्रंथाचे उदा. मंजुघोषा 'मुक्तामाला' या कादंबरीची थोडक्यात चिकित्सा केली आहे. याजबरोबर पौराणिक ग्रंथातील फोलपणा दाखवून देव व ऋषी कसे दोषी असून त्यांना माफ केले आहे. याचाही समाचार त्यांनी मराठमोळ्या भाषेतून घेतला आहे.

भारतीय स्त्रीवादाला महात्मा फुले सावित्रीबाई फुले ताराबाई शिंदे, गो.ग. आगरकर, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांच्या वैचारिक वारसा आहे. या थोर महात्म्यांनी स्त्रीयांना व बहुजनांना विकासाचा ज्ञानाचा मार्ग दाखविला. मराठी स्त्रीवादी समीक्षेने त्यांच्या विचारांचे बोट धरून चालले पाहिजे. तिला पाश्चात्य स्त्रीवादी विचारधारेच्या कुबड्या घेण्याची आवश्यकता नाही. कारण भारतीय समाजव्यवस्था, संस्कृती, वर्गसंघर्ष याचे रूप पाहता येथे तळागाळातील स्त्रियांचा व त्यांच्या जगण्याचा, समस्यांचा विचार महत्त्वाचा ठरतो. हा विचार केल्याशिवाय मराठी स्त्रीवादी समीक्षेला पुढे जाता येणार नाही.

वाङ्मयीन कलाकृतीकडे पाहण्याचा स्त्रीकेंद्री दृष्टिकोन आणि समाजातील रूढ पितृसत्ताक पद्धतीला वाङ्मयीन समीक्षेच्या माध्यमातून दिलेला धक्का असे स्त्रीवादी समीक्षेचे वर्णन करता येईल. अश्विनी धोंगडे यांनी स्त्रीवादी समीक्षेविषयी खालील विचार मांडले आहेत.

1. फिमेल : स्त्री समीक्षा लेखिकांचा अ-राजकीय (अ-पोलिटिकल) विचार या समीक्षेत स्त्रीवादी न होता स्त्री-समीक्षक असणे महत्त्वाचे आहे.
2. फेमिनीन् : स्त्रियांवर वर्चस्व गाजविणा-या पुरुषी समाजात दडपलेल्या, बाजूला टाकलेल्या गप्प बसविल्या गेलेल्या पण विशिष्ट राजकीय भूमिका न घेतलेल्यांच्या वाङ्मयीन हुंकाराची समीक्षा.

3. फेमिनिष्ट : पितृसत्ताक व लिंगवाद याविरुद्ध राजकीय भूमिका घेणा-या साहित्याची समीक्षा. <sup>11</sup>

समाजामध्ये रूढ असलेल्या लिंगभेदावर आधारित असे संकेत बदलायला हवेत अशी स्त्रीवाद्यांची भूमिका आहे. कोणत्याही कलाकृतीकडे पाहण्याचा सत्रीवाद्यांचा दृष्टिकोन पुढीलप्रमाणे असतो.

1. कलाकृती स्त्री प्रतिमा कशी रंगवते.
2. लिंगभावासंबंधी या कलाकृतीचा दृष्टिकोन कसा आहे?
3. लिंगभेदाची व्याख्या ही कलाकृती कशी करते?
4. या मुद्यांना महत्त्व नाही असे मानून हे मुद्दे टाळते की काय? या चार दिशांनी कलाकृतीचा अभ्यास करतो. <sup>12</sup>

### स्त्रीवादी समीक्षेची गृहितके

1. पुरुषसत्ताक, मूल्यदृष्टीतून आलेल्या रचना बंधाना, विचार व्यूहांना छेद देणे, वाङ्मयाचे पुरुषकेंद्री, मानदंड, प्रमाणके, यांचे पुनर्मूल्यांकन करून नवे मानदंड, नवी मूल्ये निर्माण करणे.
2. इतिहास दडपल्या गेलेल्या स्त्री लेखिकांचा शोध घेऊन त्यांची पुनःस्थापना करणे.
3. पुरुष निर्मित साहित्याचे स्त्रीवादी वाचन करणे.  
वाङ्मयात पुरुषी मूल्यदृष्टीतून स्त्रीशरीराची प्रतिमा कशी अवतरते तसेच पुरुषनिर्मित साहित्यातील दुटप्पीपणा उघड करणे.
4. स्त्रीवादी वाचक समूह तयार करणे. वाङ्मयीन संहितेतील स्त्रीपात्रांच्या वाट्याला येणारे दुय्यमत्व व साधन मूलकत्व ओळखायला शिकविणे. वाङ्मयीन रूपबंधातून, शैली वैशिष्ट्यातून आशयातील स्त्री विशिष्टता कशी वाचावी याविषयी दृष्टिकोन तयार करणे.
5. केवळ स्त्रियांचे म्हणून कोणते आकृतिबंध असू शकतील याचा शोध घेणे आणि त्यांची प्रस्थापना करण्यासाठी पुढाकार घेणे. स्त्री विशिष्ट अनुभवविश्वाला स्त्रीशक्तीचाच एक मुलस्रोत मानून त्यांना वाङ्मयीन घाटांचा विषय बनविणे. <sup>13</sup>

‘स्त्रीवाद ही एक साचेबंद विचारप्रणाली नसून स्त्रीमुक्तीच्या संदर्भातील खुल्या विचारांचा संच असे या वादाचे स्वरूप आहे.’ असे डॉ. मंगला वरखेडे यांनी म्हटले आहे.

### स्त्रीवादी समीक्षेचे तात्त्विक प्रमेय

स्त्रीवादी समीक्षेचे पहिले तात्विक प्रमेय म्हणजे अर्थातच ‘स्त्री’ या संकल्पनेविषयीचे सिद्धांत होय. त्यामध्ये स्त्री या संकल्पनेच्या तीन मूलभूत पातळ्या मानलेल्या आहेत. पहिली पातळी शारीर वा जैविक भेदाची आहे. नर आणि मादी यांची शरीररचना निसर्गानेच भिन्न ठेवलेली आहे. परंतु ब-याचदा या शारीर व जैविक भेदाची गल्लत सामाजिक-सांस्कृतिक भेदाशी केली जाते. स्त्री ही निसर्गतःच नाजूक, गोड, लाजरी, मर्यादाशील, विनयशील वगैरे असते असे आपण म्हणतो, तेव्हा खरे पाहता शारीर वा जैविक गुणांशी त्याचा काही संबंध नसतो, तर समाजाच्या व संस्कृतीच्या स्त्रीविषयीच्या अपेक्षा, स्वप्ने व हितसंबंध स्त्रीवर आरोपित केले जात असतात. स्त्रीत्वाची संकल्पना (नाजूक, गोड, लाजरी, मर्यादाशील, विनयशील इ.) हा समाज व संस्कृतीने घडविलेला एक साचा आहे. परंतु या साच्याचे खरे स्वरूप लपवून त्याला शारीर वा जैविक पातळीवरील संकल्पना म्हणून मांडण्याची, स्त्रीचे सत्त्व (इसेन्स) किंवा स्वभाव म्हणून मानण्याची चाल किंवा खेळी समाजातील प्रबळ घटक म्हणजे अर्थातच पुरुष - खेळत असतो. स्त्रीत्वाच्या संकल्पनेचे असे ‘एकसत्त्वीकरण’ (इसेन्शियलायझेशन) आणि ‘स्वाभाविकीकरण’ (नॅचरलायझेशन करण्यामध्ये पुरुषांचे हितसंबंध कसे गुंतलेले असतात हे दाखवून देणे व त्यात बदल घडवून आणणे हे राजकीय पातळीवरील कार्य स्त्रीवादी तत्त्वज्ञान करते. तेव्हा जैविक पातळीवर ‘मादीपणा’, सामाजिक-सांस्कृतिक पातळीवर ‘स्त्रीत्व’ आणि राजकीय पातळीवर ‘स्त्रीवाद’ या तीन पातळ्या एकमेकींपेक्षा वेगळ्या आहेत आणि तरीही एकमेकींशी संबंधित आहेत. हे स्त्रीवादी विचारसरणी मागचे एक मूलभूत तत्त्व आहे.)

स्त्रीवादी समीक्षेचे दुसरे सैद्धांतिक प्रमेय असे, की स्त्रीत्वाची प्रचलित सामाजिक-सांस्कृतिक संकल्पना पुरुषप्रधान विचार चौकटीमधून व त्यावर आधारित सौंदर्यशास्त्रीय सिद्धांतामधून निर्माण झालेली आहे. पुरुषांशी तुलना करता स्त्रीमध्ये काही गुणधर्मांचा ‘अभाव’ असतो हे पुरुषप्रधान विचार चौकटीचे एक लाडके प्रमेय आहे, हे सिद्ध करण्यासाठी स्त्रीवादी समीक्षकांनी भरपूर पुरावे गोळा केलेले आहेत<sup>14</sup>

### स्त्रीवादी समीक्षेचे दुहेरी कार्य

भारतामध्ये संस्कृतीची जोपासना करताना स्त्री वर्गाचा बळी घेतला गेला आहे. त्यांना मानवी हक्कांपासून वंचित ठेवले. संस्कृतीचे हे विकृतीकरण आणि त्याची साहित्यात झालेली मांडणी शोधणे स्त्रीवादी समीक्षेचे कार्य आहे. <sup>14</sup>

“वसाहतकाळापासून आजच्या उत्तर आधुनिक काळापर्यंत या सगळ्या बदलांचे चित्रण पुरुषी आणि स्त्री लिखित साहित्यात कसे झाले याचा आढावा स्त्रीवादी समीक्षेला घ्यावा लागणार आहे. वास्तव समाजाचे चित्रण साहित्यात असते. स्त्रीवादाचा आक्षेप

सामाजिक, राजकीय, सांस्कृतिक आणि आर्थिक प्रणालीवर आहे. या आधारे निर्माण झालेले साहित्य आणि साहित्यमूल्ये यांची चिकित्सा करणे येथे आवश्यक ठरते. नुसती चिकित्सा करून समीक्षेचे कार्य संपले असे होत नाही तर ही चिकित्सक स्त्रीवादी मूल्ये प्रत्यक्षात उतरविणे येथे महत्वाचे ठरते. पुरुषी व्यवस्थेला छेद देऊन प्रस्थापित संकल्पना मोडीत काढणे आणि त्या प्रत्यक्ष समाजजीवनात उतरविण्यासाठी प्रयत्न करणे असे दुहेरी कार्य स्त्रीवादी समीक्षेला करावे लागते.”<sup>15</sup> असे डॉ. वंदना महाजन यांनी म्हटलेले आहे.

महाराष्ट्रातील तेराव्या शतकातील भक्ती चळवळ, एकोणिसाव्या शतकातील सुधारणावादी चळवळी, विसाव्या शतकातील चळवळ, स्त्रीवादी नियतकालिकांचे कार्य यातून स्त्रीच्या जाणीवा विकसित झाल्या. त्यांच्या ठिकाणी भगिनीभाव निर्माण झाला, त्या लिहित्या झाल्या. अशा प्रकारे महाराष्ट्रात स्त्रीवादी विचारधारा रुजली डॉ. विद्युत भागवत, विद्या बाळ, छाया दातार, गीता साने, गौरी देशपांडे, इत्यादी मराठी लेखिकांनी स्त्रीप्रश्नांना प्राधान्य देऊन मोठया प्रमाणात लेखन केले.

### समारोप

स्त्रीवाद ही वैश्विक संकल्पना आहे. पाश्चात्य स्त्रिया सामाजिक, आर्थिक आणि राजकीय हक्कांसाठी एकत्र आल्या. आपल्या हक्कांसाठी लढल्या, त्यातून स्त्रीवादी विचारसरणीचा जन्म झाला. भारतामध्ये स्त्रियांना हे भान थोर समाजसुधारक महात्मा फुले, सावित्रीबाई फुले, डॉ. आंबेडकर, आगरकर, लोकहितवादी, विठ्ठल रामजी शिंदे आणि महर्षी कर्वे यांनी आणून दिले. आपल्या देशात मातृप्रधान संस्कृती होती. परंतु परकीय आक्रमणाच्या काळात स्त्री पुन्हा चुल व मुल यामध्ये अडकली ती कायमची. वरील सुधारकांनी क्रांतीकारक बदल घडवून आणले. भारतीय स्त्रियांना मतदानाचा हक्क संविधानाने (राज्यघटना) मिळाला. येथील स्त्री प्रश्न सोडविण्यात येथील सुधारकांनी यश मिळविले. भारतीय रूढी, परंपरा, संस्कृती, जातीव्यवस्था या सर्वांचा विचार करून भारतीय स्त्रीवादाची मांडणी करावी लागेल. जगभरातील स्त्रियांवरील अन्याय अत्याचारात साम्य असले तरी प्रत्येक संस्कृतीचे संदर्भ वेगळे असल्याने येथील समीक्षेला पाश्चात्य विचारधारेप्रमाणे चालता येणार नाही. त्यामुळे स्त्रीवादाची पुनर्मांडणी करावी लागेल. स्त्री आणि पुरुष या दोघांचाही विकास सारखा व्हावा. हेच या विचारामागील सूत्र आहे.

### संदर्भ ग्रंथ :

1. स्त्रीवाद : संपादक, सुमती लांडे, पृ.5, प्रस्तावना.
2. तत्रैव पृ.107.
3. मराठी कादंबरीतील स्त्रीवाद : वंदना महाजन, पृ.13.

## संगोष्ठी सौरभ

---

4. उनि. पृ.118.
5. स्त्रीवादी सामाजिक विचार : विद्युत भागवत, पृ.33.
6. तत्रैव पृ.33.
7. तत्रैव पृ.34
8. मराठी वाङ्मयकोश खंड चौथा (समीक्षा-संज्ञा), संपा. विजया राजाध्यक्ष पृ.407
9. समीक्षेतील नव्या संकल्पना पृ.125.
10. स्त्रीवादी समीक्षा स्वरूप आणि उपयोजन, डॉ. आश्विनी धोंगडे, पृ.51.
11. तत्रैव पृ.51.
12. उनि. पृ.129.
13. उनि. पृ.409.
14. स्त्रीवादी आणि मराठी साहित्य : डॉ. वंदना महाजन, पृ.32.
15. तत्रैव पृ.32.

डॉ. प्राजक्ता शिन्ने  
आर. के. तलरेजा महाविद्यालय,  
उल्हासनगर,  
prajaktashitre70@gmail.com  
मोबा.९९७०२२९७१६



# शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में श्वासन की उपयोगिता

डॉ. प्रकाश वर्मा ( सोनी )

जीवन का संतुलित, सर्वांगीण और संपूर्ण विकास ही शिक्षा का चरम लक्ष्य है । इस आलोक में जब आधुनिक शिक्षा धारा का सिंहावलोकन करते हैं तो पाते हैं कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली न केवल अधूरी और दोषपूर्ण है अपितु निष्प्राण भी है । जब तक शिक्षा में सर्वांगपूर्ण योग को सम्यक् स्थान नहीं मिलेगा तब तक शिक्षा में महनीय लक्ष्य की प्राप्ति असंभव है, मात्र कल्पना मात्र है । हम सारा दोष छात्रों के सर पर मढ़कर निश्चित जो जाना चाहते हैं । हम कहते हैं कि आज के छात्र अनुशासनहीन व उच्छृंखल हो गये हैं । इसके तह में जायेंगे तो आज की हमारी शिक्षा प्रणाली भी कम दोषी नहीं है। कहा जाता है- 'ज्ञान, वह प्रकाश है जो हमारे जीवन का मार्ग-दर्शन करता है' क्या आज की शिक्षा छात्रों को वह प्रकाश प्रदान करती है जिसके आलोक में छात्रगण अपने जीवन को सर्वांगपूर्ण बना सकें? आज ऊंची शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भी हममें सारी विकृतियां रह जाती हैं जिन्हें दूर करना ही शिक्षा का मूल उद्देश्य है । इस दिशा में माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के सद्प्रयासों से 21 जून को अन्तराष्ट्रीय योग दिवस घोषित हुआ । इस कार्य में एक मोल का पत्थर साबित होगा । परंतु इसके अतिरिक्त भी 'योग' को दैनिक जीवन में अपनाना होगा ताकि शिक्षा के मूल स्वरूप को प्राप्त कर सके। योग आध्यात्मिक लक्ष्य के प्राप्त करने का तो अचूक साधन है ही, पर सांसारिक दृष्टि से भी मानव-जीवन की सफलता तथा सार्थकता का सर्वोत्तम मार्ग है क्योंकि योग का सबसे मुख्य लाभ सब प्रकार की बाधाओं को हटा, चित्त और उसकी वृत्तियों (इच्छा और कामनाओं) पर अधिकार प्राप्त करना होता है । योगाभ्यास करने वाला कभी भी आतंकवादी, उग्रवादी या देशद्रोही नहीं बनेगा ।

## शारीरिक शिक्षा

किसी भी समाज में शारीरिक शिक्षा का महत्व उसकी युद्धोन्मुख प्रवृत्तियों, धार्मिक विचारधाराओं, आर्थिक परिस्थिति तथा आदर्श पर निर्भर होती है । प्राचीन काल में शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य मांसपेशियों को विकसित करके शारीरिक शक्ति को बढ़ाने तक ही सीमित था और इस सब का तात्पर्य यह था कि मनुष्य आखेट में, भारवहन में, पेड़ों पर चढ़ने में, लकड़ी काटने में, नदी, तालाब या समुद्र में गोता लगाने में सफल हो सके । किंतु ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती गई, शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य में भी परिवर्तन होता गया और शारीरिक शिक्षा

का अर्थ शरीर के अवयवों के विकास के लिए सुसंगठित कार्यक्रम के रूप में होने लगा । वर्तमान काल में शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम के अंतर्गत व्यायाम, खेलकूद, मनोरंजन आदि विषय आते हैं । साथ साथ वैयक्तिक स्वास्थ्य तथा जनस्वास्थ्य का भी इसमें स्थान है । कार्यक्रमों को निर्धारित करने के लिए शरीररचना तथा शरीर-क्रिया-विज्ञान, मनोविज्ञान तथा समाज विज्ञान के सिद्धान्तों से अधिकतम लाभ उठाया जाता है । वैयक्तिक रूप में शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य शक्ति का विकास और नाड़ी स्नायु संबंधी कौशल की वृद्धि करना है तथा सामूहिक रूप में सामूहिकता की भावना को जाग्रत करना है ।

### PHYSICAL EDUCATION MEANING

The word "Physical Education" comprises of two separate words. "Physical" and "Education". The plain dictionary meaning of word physical as "relating to body", which may mean any one or all body characteristics of a person such as physical strength, physical endurance, physical fitness, physical appearance or physical health. The word „ education" may mean "the systematic instructions or training or preparation for some particular task".

### DEFINITION

"Physical Education is an education of and through human movement where many of the educational objectives are achieved by means of big muscle activities involving sport, games, gymnastics, dance, and exercises". –

### Harold M. Barrow OBJECTIVES

1. Development of Organic Fitness
2. Development of Mental health
3. Social Development
4. Development of Neuro muscular co- ordination
5. Development of Desirable Habits:
6. Development of Personality
7. Providing for Mental Hygiene
8. Development of Functional Knowledge
9. Development of qualities of a good Citizenship

### SCOPE OF PHYSICAL EDUCATION

#### 1. Corrective Exercises:

Corrective exercises help to remove the deformities in the body of a child. Sometimes these defects are there because of defects in muscle development. We use light corrective exercises.

#### 2. Games and Sports:

Various team games like hockey, football, cricket, basketball and volley ball etc, and individual events like athletics, wrestling, boxing judo and archery are included in the programmers of physical education. Swimming, diving, canoeing etc. are related to water sports.

### **3. Rythmics:**

Gymnastics, Lezioms, Dance, Mass physical training and Dumb bell etc. are rhythmical activities necessary for rhythm and balance Rhythmical activities are also included in the progrmmes of physical education.

### **4. Self defence activities:**

Hiking, Trekking, judo, karate and self defence activities are included in the programmes of physical education.

### **5. Recreational Activities:**

Recreational activities like minor games, chess, carom, horse riding, education camps, hunting, folk dance, fishing etc. are included in the programmes of physical education.

### **6. Yogic activities:**

Yogic activities such as Asanas, Pranayama, kriyas etc. are included in physical education.

## **IMPORTANCE OF PHYSICAL EDUCATION**

- Physical education develops the alertness of mind.
- Physical education provides knowledge about health and, its hazards, and communicable and non communicable diseases.
- Through physical activities, leisure time can be utilized properly.
- Through physical education human body can be developed in good proportion. The Physical beauty also improves.
- A good sports man is a good citizen. He knows how to adjust with others.
- Physical education leads to happiness efficiency and character building.
- Physical education helps in developing and maintaining of good relations among human beings. It develops social traits, like cooperation. sympathy, loyalty, fraternity, courtesy and other traits of leadership.
- Physical education helps in creating discipline through games and sports.
- Physical education provides a number of opportunities to enhance the power of tolerance.

- Physical education enhances all the essential traits required for development of the personality.
- Aggressiveness can be eliminated through physical activities. By participating physical activities we can overcome stress, tension and sensitiveness.

Most people are in opinion that **Yoga** refers to performing exercises to keep the body fit and trim. But it is more than that. The systematic yogic practices not only eliminate and control several diseases but also keep the mind perfect, clean and peaceful. That means the yogic practice gives both physical and mental perfection.<sup>1</sup>

हजारों वर्षों से मनुष्य शारीरिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए विभिन्न उपाय करते आ रहे हैं। कई प्रकार के खेलकूद, व्यायाम के रूप में बच्चों को सिखलाये जाते हैं। ये मनोरंजक व्यायाम बाद में उनकी रूचि व शौक बनते हैं तथा कई खिलाड़ियों के तो जीवन का एक अंग ही बन जाते हैं परन्तु जब ये व्यवसाय या शौक बन जाते हैं तब मनुष्य स्वास्थ्य का ध्यान किए बिना इनके पीछे पड़ा रहता है। उम्र की ढलान के साथ यह शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक शक्ति का अतिव्यय, एक रोग का रूप धारण कर लेता है। मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि क्रीडा/खेलकूद बंद कर देना चाहिए। आजकल तो विभिन्न खेलों ने कई राष्ट्रों के मध्य आपसी संबंधों को सुदृढ़ करने के साथ सांस्कृतिक, व्यावसायिक रिश्ते भी बनाये हैं। आज कई खिलाड़ी खेल के पर्याय / पहचान बन गये हैं।

खेलों के प्रतिस्पर्धा ने मनोरंजन के साथ अनेकानेक लाभ भी दिया है। किन्तु भविष्य में होने वाले घातक दुष्परिणामों को दृष्टिगत रखते हुए तथा खेल में अधिक स्फुटों व लगन प्राप्ति के लिए योग का खिलाड़ियों के जीवन में बहुत अधिक महत्त्व है। इसे स्वास्थ्य / आयुष विभाग भी अनुभव करता है। कई देशों में स्वास्थ्य विभाग में खेलकूद निर्देशक व खिलाड़ियों को विशेष योग प्रशिक्षण दिया जा रहा है। कई खेलों में स्वास्थ्य विभाग में खेलकूद निर्देशक व खिलाड़ियों को विशेष योग प्रशिक्षण दिया जा रहा है। कई खेलों में योग प्रशिक्षक की पूरी टीम खिलाड़ियों के साथ में रहती है। दश एवं विदेश के कई विद्यालयों/महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों में योग विभाग भी है। विभिन्न शोधों से मालूम हुआ है कि खिलाड़ियों के लिए योगाभ्यास बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

खिलाड़ी को खेल में जितनी शारीरिक बल की आवश्यकता होती है, उससे अधिक एकाग्र चित्त, तत्परता, कुशाग्र बुद्धि, सजग एवं स्फूर्त मन की भी होता है। कई ऐसे खेल हैं जिसमें खिलाड़ी शरीर से कमजोर हो पर चतुर एवं चंचल हुआ तो जीत सकता है। इसी प्रकार खिलाड़ी क्रीडा के पश्चात् थकान का अनुभव अधिक करे तो यह स्वास्थ्य के लिए

अहितकर है । अपितु खेल के पश्चात् तो तनावरहित एवं आनंदित होना चाहिए । खेलों में जय-पराजय एक ऐसी होड़ होती है जो खेल के शुरूआत से अंत तक दिमाग में बनी रहती है । कई बार अच्छे-अच्छे खिलाड़ी भी असफलता की संभावी दुश्चिंता या नकारात्मकता के कारण पक्षाघात के शिकार हो जाते हैं । कई विश्व प्रसिद्ध खिलाड़ी जिनका निजी प्रदर्शन शानदार रहा परंतु कप्तान के रूप में असफल । वैसे खेल के मैदान में जय-पराजय दोनों के लिए ही तैयार होकर मैदान में उतरता है । हम देखते हैं कई खिलाड़ों खेल के मैदान में बहुत ही आक्रामक रहते हैं । कई खिलाड़ों गाली गलौच विपक्षी टीम के साथ तो करते हैं साथी टीम से भी कर लेते हैं । खेल के मैदान पर मुर्च्छा, हृदयघात, चोट लगना, अस्वस्थ हो जाना आदि कई प्रकार की घटनाएँ आये दिन खिलाड़ियों के साथ हम देखते हैं । कई खिलाड़ियों की मृत्यु खेल के मैदानों पर हो चुकी है । आदि कई कारणों से योग के प्रयोग की बहुत अधिक आवश्यकता है ।

अर्जुन की दृष्टि की तरह यदि हमारा ध्यान भी लक्ष्य पर केन्द्रित होगा तो निश्चित रूप से सफलता का वरण कर पायेंगे । पर इसके लिए सतत योग आसन, प्राणायाम एवं ध्यान का अभ्यास आवश्यक है ।

### शवासन

आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में सर्वांगीण विकास को प्रमुखता दी जाती है । मनुष्य अंधी दौड़ में दौड़ रहा है जिसके कारण अनेकानेक बिमारियों से ग्रस्त और त्रस्त है जिसके समाधान का सबसे सरल और आसान तरीका है शवासन । यहाँ मन और शरीर दोनों को थका देता है दिनभर का काम-काज । शाम होते होते सिरदर्द से बुरा हाल हो जाता है । जब थकान हृद से ज्यादा होती है तो नींद भी नहीं आती है । इन सबका उपाय है, शवासन । शवासन मृत्यु की प्रक्रिया है । इसमें दो बातें घटित होती हैं - शरीर इतना शिथिल कि उसमें कोई ऐच्छिक (Voluntary) प्रवृत्ति नहीं होती । श्वास इतना मंद कि उसके स्पंदन अत्यंत हल्के हो जाते हैं । लगता श्वास बंद हो गया । जब किसी व्यक्ति को जीवित होते हुए भी मृत होने की अनुभूति हाती है, तब शवासन घटित होता है ।

**उत्तानं शववत् भूमौ शयनं तु शवासनम् ।**

**शवासनं श्रमहरं चित्तविश्रान्तिकारणम् ॥<sup>२</sup>**

इसमें जमीन पर सीधे लेटकर अपने सारे शरीर को एक मृतक के समान ढोला छोड़ना है । यह श्रम को थकान को दूर करने और चित्त को संतोष देने वाला है ।<sup>३</sup>

आसन का नाम सुनकर यदि आप ये सोच रहे हों कि शरीर तोड़ना मरोड़ना पड़ेगा। सांस खींचनी छोड़नी पड़ेगी । तो ये सब भूल जाइये । शवासन है सबसे आसान आसन ।

ये सभी आसन में सबसे आसान है। जो तनाव को दूर करने में सहयोग करता है। तनाव एक ऐसी परेशानी है, जो आपको चारों ओर जानें कितनी ही बीमारियों के लिए आधार तैयार करती है। यहां तक कि बालों के झड़ने का सबसे बड़ा कारण तनाव ही है। इसलिए बहुत जरूरी है कि हम तनाव से बचकर रहे। यहां शव का अर्थ होता है मृत अर्थात् अपने शरीर को शव के समान बना लेने के कारण ही इस आसन को शवासन कहा जाता है। यह दो शब्दों के योग से बना है शव + आसन = शव आसन या शवासन। इस आसन का उपयोग प्रायः योगसत्र को समाप्त करने के लिए किया जाता है। यह एक शिथिल करने वाला आसन है और शरीर, मन और आत्मा को नवस्फूर्ति प्रदान करता है। ध्यान लगाने के लिए इसका सुझाव नहीं दिया जाता क्योंकि इससे नींद आ सकती है। तनाव मुक्ति की साधना/शवासन का प्रयोग तनाव को समाप्त करने का एकदम सीधा, सरल और वैज्ञानिक उपाय है। कोई भी व्यक्ति इस साधना को सीख लेता है और प्रतिदिन आधा या पौना घंटा नियमित उसका अभ्यास करता है तो किसी भी परिस्थिति में न केवल तनाव-मुक्त रह सकता है, अपितु अपनी कार्यक्षमता और गुणवत्ता को बढ़ा सकता है। अनेक घंटों की अव्यवस्थित निद्रा की अपेक्षा आधा घंटा के सधे हुए शवासन से व्यक्ति के तनाव और थकान को अधिक भली-भांति दूर किया जा सकता है। शवासन की साधना हमारी सचेतन इच्छा-शक्ति के शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव को व्यक्त करने वाली एक साधना है। शवासन कभी भी बल प्रयोग या हिंसक भावों से नहीं, अपितु मात्र विनम्र निवेदन, स्वतः सुझावों से ही सधता है।

### शवासन विधि

- पीठ के बल लेट जाएँ और दोनों पैरों में डेढ़ फुट का अंतर रखें। दोनों हाथों को शरीर से 6 इंच (15 सेमी) की दूरी पर रखें। हाथों को इस तरह रखे की दोनों हाथ की हथेलियाँ आसमान की दिशा में हो।
- शरीर को तनावरहित करने के लिए अपनी कमर और कंधों को व्यवस्थित कर लें। शरीर के सभी अंगों को ढीला छोड़ दें। आँखों को कोमलता से बंद कर लें। शवासन करने के दौरान किसी भी अंग को हिलाना-डुलाना नहीं है।
- आप अपनी सजगता (ध्यान) को श्वास की ओर लगाएँ और उसे अधिक से अधिक लयबद्ध करने का प्रयास करें। गहरी साँसें भरें और साँस छोड़ते हुए ऐसा अनुभव करें कि पूरा शरीर शिथिल होता जा रहा है। शरीर के सभी अंग शिथिल हो रहे हैं। पाँव के अंगुठे से लेकर सिर तक के प्रत्येक अवयव शिथिल हो गये

है । पहले देखे, फिर सुझाव देवे और अंत में अनुभव करे कि शरीर के अवयव शिथिल हो गया है ।

- कुछ देर साँस की सजगता को बनाए रखें, आँखें बंद ही रखें और भू-मध्य (भौहों के मध्य स्थान पर) में एक ज्योति का प्रकाश देखने का प्रयास करें ।
- यदि कोई विचार मन में आए तो उसे साक्षी भाव से देखें, उससे जुड़िए नहीं, उसे देखते जाएँ और उसे जाने दें । कुछ ही पल में आप मानसिक रूप से भी शांत और तनावरहित हो जाएँगे ।
- आँखें बंद रखते हुए इसी अवस्था में आप 10 से 1 (या 25 से 1) तक उल्टी गिनती गिनें । उदाहरण के तौर पर मैं साँस ले रहा हूँ 10 मैं साँस छोड़ रहा हूँ 10, मैं साँस ले रहा हूँ 9, मैं साँस छोड़ रहा हूँ 9 । इस प्रकार शून्य तक गिनती को मन ही मन गिनें ।
- यदि आपका मन भटक जाए और आप गिनती भूल जाएँ तो दोबारा उल्टी गिनती आरंभ करें । साँस की सजगता के साथ गिनती करने से आपका मन थोड़ी देर में शांत हो जाएगा ।

### कितनी देर करें श्वासन

योग की पाठशाला में आप 2 या 5 मिनट तक श्वासन का अभ्यास कर सकते हैं । अलग से समय निकाल पाएँ तो 30 से 35 मिनट तक श्वासन का अभ्यास नियमित रूप से करना चाहिए । विशेषकर थक जाने के बाद या सोने से पहले ।

### सावधानियाँ

- आँखें बंद रखनी चाहिए । हाथ को शरीर से छह इंच की दूरी पर व पैरों में एक से डेढ़ फीट की दूरी रखें । शरीर को ढीला छोड़ देना चाहिए । श्वास की स्थिति में शरीर को हिलाना नहीं चाहिए ।
- श्वासन करते समय अपने अंदर ऐसा कोई विचार न आने दें जिससे आपको मानसिक तनाव हो । आपके ध्यान को साँस की ओर लगाकर रखें ।
- श्वासन के दौरान किसी भी अंग को हिलाएँ नहीं । सजगता को साँस की ओर लगाकर रखें । अंत में अपनी चेतना को शरीर के प्रति लेकर आएँ ।
- दोनों पैरों को मिलाइए, दोनों हथेलियों को आपस में रगड़िए और इसकी गर्मी को अपनी आँखों पर धारण करें । इसके बाद हाथ सीधे कर लें और आँखें खोल लें ।

लाभ

## संगोष्ठी सौरभ

---

यदि श्वासन को पूरी सजगता के साथ किया जाए तो यह तनाव दूर करता है, उच्च रक्तचाप सामान्य करता है और नींद न आने की समस्या को दूर भगाता है। सामान्य वर्ग के लिए निम्न लाभ हैं -

- श्वासन एक मात्र ऐसा आसन है, जिसे हर आयुवर्ग के लोग कर सकते हैं। यह सरल भी है। पूरी सजगता के साथ किया जाए तो तनाव दूर होता है, उच्च रक्तचाप सामान्य होता है, अनिद्रा को दूर किया जा सकता है।
- आरामदायक अवस्था में होने के कारण श्वासन करने से शरीर तनाव से मुक्त हो जाता है और ब्लड प्रेशर अच्छी तरह से प्रवाहित होने लगता है।
- बिना किसी अधिक मेहनत के आप श्वासन योग से आप मन को शांत कर सकते हैं। श्वासन से आपका मन शांत और एकाग्र होता है।
- सेक्स लाइफ को बेटर बनाने के लिए अच्छे सोच की जरूरत होती है। उसके लिए आपके मन को शांत होना जरूरी है। मन शांत के लिए श्वासन के अलावा क्या बेस्ट हो सकता है।
- श्वासन करने से दिमाग की कार्यक्षमता और आत्मविश्वास बढ़ता है।
- इस आसन से आपका दिमाग काफी तेज काम करता है।
- मधुमेह से बचने के लिए भी यह आसन फायदेमंद है।
- इस आसन को करने से मानसिक बीमारियां जैसे डिप्रेशन, हिस्टेरिया इत्यादि से लाभ होता है।
- श्वास की स्थिति में हमारा मन शरीर से जुड़ा हुआ रहता है, जिससे कि शरीर में किसी प्रकार के बाहरी विचार उत्पन्न नहीं होते। इस कारण से हमारा मन पूर्णतः आरामदायक स्थिति में होता है, तब शरीर स्वतः ही शांति का अनुभव करता है। आंतरिक अंग सभी तनाव से मुक्त हो जाते हैं, जिससे कि रक्त संचार सुचारु रूप से प्रवाहित होने लगता है और जब रक्त सुचारु रूप से चलता है तो शारीरिक और मानसिक तनाव घटता है। विशेषकर जिन लोगों को उच्च रक्तचाप और अनिद्रा की शिकायत है, ऐसे रोगियों के लिए श्वासन अधिक लाभदायक है।
- शरीर जब शिथिल होता है, मन शांत हो जाता है तो आप अपनी चेतना के प्रति सजग हो जाते हैं। इस प्रकार आप अपनी प्राण ऊर्जा को फिर से स्थापित कर पाते हैं। इससे आपके शरीर को ऊर्जा पुनः प्राप्त हो जाएगी।

गहराई से देखने पर श्वासन के निम्न लाभ हैं-

## संगोष्ठी सौरभ

---

- श्वासन की प्रथम अवस्था में स्थिरता प्राप्त होती है । शारीरिक स्तर पर तनाव-मुक्ति का अनुभव होने लगता है तथा कुछ मनः कायिक रोगों में प्रत्यक्ष सुधार का अनुभव होने लगता है ।
- श्वासन की द्वितीय अवस्था में स्नायु तंत्र प्रभावित होता है ।
- मस्तिष्क की तरंगों और मस्तिष्कीय विद्युत् में परिवर्तन आ सकता है ।
- ऑक्सीजन की खपत कम हो जाती है ।
- शारीरिक कार्य क्षमता बढ़ जाती है ।
- जागरूकता के कारण बुद्धि की जड़ता नष्ट हो जाती है ।
- सर्दी-गर्मी आदि द्वंद्वों को सहने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है ।
- चित्त की एकाग्रता सुलभ हो जाती है ।
- श्लेष्म आदि दोषों के क्षीण होने से देह की जड़ता नष्ट होती है ।
- रोग-निरोधक शक्ति । अनकंपी नाड़ी-संस्थान की अत्यधिक सक्रियता के दुष्परिणामों से बचने के लिए यह सहज और निरापद मार्ग है ।
- धूम्रपान, मद्यपान जैसे मादक पदार्थों के व्यसन से पीड़ित व्यक्ति की व्यसन मुक्त करना । भांग, चरा, गांजा, अफीम, चरस, हेराइन, कोकीन, एलएसडी आदि अनेकनेक खतरनाक नशीले पदार्थ जो सेवन करने वाले मनुष्य के स्वास्थ्य को बुरी तरह से बिगाड़ देते हैं तथा अनेकाबार अकाल मृत्यु के मुहं में धकेल देते हैं । कई स्थापित खिलाड़ियों ने नशीले पदार्थों के सेवन करके अपने कैरियर को समाप्त कर लिया है । श्वासन नशीले पदार्थों का एक अरासायनिक विकल्प है, जो सर्वथा निर्दोष या निरापद ही नहीं अपितु स्वास्थ्यवर्धक है । नशीले पदार्थों के सेवन से जो मस्ती आती है, उसकी अपेक्षा ध्यान द्वारा होने वाली आनन्दानुभूति अधिक गहरी और निर्दोष है।
- स्थूल चेतना की बात को भीतर में सूक्ष्म तक पहुंचाने का कार्य श्वासन करता है ।
- साधना में श्वासन की उपयोगिता है ।
- तृतीय अवस्था में स्थूल शरीर का बोध क्षीण हो जाता है । सूक्ष्म शरीर की सक्रियता बढ़ जाती है और कभी-कभी स्थूल शरीर को छोड़कर बाहर चला जाता है । इस स्थिति में सूक्ष्म पदार्थ दृष्टिगत होने लग जाते हैं ।
- चतुर्थ अवस्था में आत्मा के चैतन्यमय स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है ।

- तनाव-मुक्ति, चंचलता की निवृत्ति, शरीर पर प्रभाव, शारीरिक लाभ, सूक्ष्म शरीर की घटनाओं का ज्ञान, आभामंडल का दर्शन, विवेक चेतना का जागरण, समता का विकास । सभी मांसपेशियां, स्नायु तथा अवयव जब पुरा आराम कर लेते हैं तब उनमें शक्ति आती है और उनका सामान्य स्वास्थ्य बना रहता है । अनिद्रा, उच्च रक्तचाप, गैस की बिमारियों, मधुमेह, अस्थमा, फेफड़ों तथा हृदय की समस्या एवं मानसिक रोगों से ग्रस्त लोगों को तुरंत आराम देने के लिए श्वासन एक अद्भुत आसन है ।

स्वस्थ जीवन के लिए श्वासन के अतिरिक्त शारीरिक प्रवृत्ति और व्यायाम भी नितांत आवश्यक है।

पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति मानव जीवन का लक्ष्य है और उसकी प्राप्ति का माध्यम है - स्वस्थ शरीर ।

यथा - धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।<sup>4</sup>

स्वस्थ शरीर ही साधन-भजन, चिंतन-मनन, नित्यासन आदि करने में समर्थ होता है । इसीलिए सद्ग्रन्थों में स्वस्थ जीवन की चर्चा प्रायः किसी न किसी रूप में मिल जाती है । श्रीमद्भगवत् गीता में भी यह चर्चा यथा स्थान उपलब्ध है ।

तन-मन और भव रोग से मुक्त रहना सच्चा आरोग्य युक्त होना है । भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में 'युक्त' के ग्रहण और 'अति' के त्याग द्वारा तन रोग से, आन्तरिक विकारों के त्याग द्वारा मनो रोग से और भगवच्छरणापन्न होकर भव रोग से छुटकारा पाने की युक्ति बतायी है ।

जड-चेतन सभी को निरोगी होना जरूरी है । पौधे और वृक्ष भी यदि रूग्ण रहे तो शुद्ध फूल और फल नहीं हो सकते । इसलिये निरोगिता सबके लिए अनिवार्य वस्तु है। चेतन प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य के लिए तो कहना ही नहीं है । व्याधिग्रस्त तन-मन वाले व्यक्ति से कुछ नहीं बन सकता । स्वस्थ मन और निरोग शरीरवाला मनुष्य मानव-जीवन के उद्देश्य को सफलता- पूर्वक प्राप्त कर सकता है । शरीर को भी अपेक्षा मन का निरोग रहना अत्यावश्यक है, क्योंकि शरीर की व्याधि असाध्य होकर अन्तिम स्थिति में पहुँचने पर इस वर्तमान स्थूल का अन्त हो जाता है ।

**सन्दर्भ -**

1. Yoga, Health & Physical Education : Dr. T. Krishnammal , Dr. D. Grace Nirmala Priyakamal pathipagam,

Health & Physical Education : Biranchi Narayan Dash Neelkamal Publications pvt. Ltd

2. हठ-योग-प्रदीपिका, प्रथमोपदेश : 34 ।
3. दैनिक जीवन में योग, पृ. 77 ।
4. च. सं. सू. 1/15 ।

श्री एस् के सोमैया विनय मन्दिर महाविद्यालय,  
विद्याविहार, मुम्बई ।

मो. नं. ९९८७६९९७२५

ईमेल - drprakashsoni3@gmail.com



### एक दुनिया समानान्तर : एक विश्लेषण

डॉ. गीता संतोष यादव

एक दुनिया समानान्तर राजेंद्र यादव द्वारा सम्पादित नयी कहानियों का सबसे प्रसिद्ध संग्रह है। राजेन्द्र यादव ने इसके आरम्भ में एक लम्बी भूमिका दी है जिसे एक अर्थ में नई कहानी का घोषणापत्र कहा जा सकता है। यह भूमिका हिन्दी साहित्य के इतिहास के पृष्ठभूमि पर कहानी के भविष्य का संकेत देती है। वह अपने समय की परिस्थितियों और साहित्य परिदृश्य की गम्भीर समझ पैदा करती है।

पहला प्रश्न है कि आखिर इस पुस्तक को एक दुनिया समानान्तर क्यों कहा गया है। इसका उत्तर भूमिका के पहले पृष्ठ पर ही नजर आता है। राजेन्द्र यादव लिखते हैं कि जिस प्रकार ब्रह्मा ने तथा एक अर्थ में विश्वामित्र ने सृष्टि की रचना की थी, उसी प्रकार हर युग का रचनाकर अपनी रचनाओं के माध्यम से एक समानान्तर सृष्टि की रचना करता है।

जिस प्रकार विश्वामित्र ने ब्रह्मा की बनाई हुई दुनिया को अस्वीकार करते हुए एक समानान्तर दुनिया का प्रयास किया था, वैसे ही आज लेखकों को ही समानान्तर सृष्टि का निर्माता होना चाहिए। वे भूमिका की पृष्ठभूमि में लिखते हैं - 'कला सर्जना कलाकार की मानस प्रक्रिया से ढलकर रूप लेती, इस संसार से लेता उसका वह रूप अपने ही स्वप्नों, स्मृतियों, आवश्यकताओं, दबाओं, कुठाओं और दृष्टियों के अनुरूप देता है, अपने उस जगत का वह नियामक है, ब्रह्म है और इस जगत में वहां के राजदूत की हैसियत से ही रहता है।'

राजेन्द्र यादव ने इस सन्दर्भ में आज के कथाकार की तुलना विश्वामित्र से भी की है। क्योंकि जिस प्रकार विश्वामित्र अपने जगत से असंतुष्ट थे, वैसे ही आज का सजग कथाकार भी आज की परिस्थितियों से हताश और निराश। वे लिखते हैं - 'अक्सर एक प्रश्न मुझे तंग करता है, विश्वामित्र नायक हैं या खलनायक? जिस संसार की उन्होंने सृष्टि की थी, वह कैसा था, आज का कथा साहित्य जब-जब अपने युग और संदर्भों और बोध के साथ मुझे खींचता है तो वह जर्जर व्यक्ति मेरे सामने आ खड़ा होता है..... एक समानान्तर सृष्टि का निर्माता, दुर्दांत आत्मविश्वास था, 'डेसपरेट' हताश से खौलता अकेला एक व्यक्ति..... इस दुनिया से अलग एक नए और भिन्न संसार की परिकल्पना को साकार करने की पीडा में आतुर-व्यस्त उपेक्षित शक्ति।'।

राजेन्द्र यादव ने यह बताया कि कथाकार को वस्तुजगत के समानान्तर एक कथाजगत की सृष्टि के क्या आदर्श होने चाहिए तथा कहानीकारों को किन खतरों से सावधान रहना चाहिए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एक तरफ आजादी का जश्न मनाया जा रहा था। समाजवादी लोकतंत्र के भारी-भरकम प्रयत्न हो रहे थे। दुनिया भर में भारत को उभरी हुई शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा था। किन्तु ये सब सिर्फ दावे थे। इनमें ज्यादा जमीनी वास्तविकता नहीं थी। यही कारण है कि उस समय का कहानीकार उम्मीद और आशा से भरी रचनाएँ नहीं लिख पाता, वह अपने माहौल के प्रति नफरत और निराशा महसूस करता है। राजेन्द्र यादव लिखते हैं - 'स्वतंत्रता के बाद के कथाकार का एक संसार वह है, जो उसके चारों ओर है और जिससे उसे आंतरिक घृणा है, बेहद नफरत है, लेकिन जिसमें रहने, टूटने और समझौता करने को वह बाध्य है।'

इसलिए राजेन्द्र यादव का स्पष्ट मानना है कि आज के लेखक को सरकारी नारों और विज्ञापनों से प्रभावित नहीं होना है, न ही आदर्शों और कल्पनाओं की कृत्रिम दुनिया में जीना है। अतीत की सुंदर यादों और भविष्य के सुन्दर स्वप्नों में भी नहीं डूबना है उसे तो पूरी ईमानदारी के साथ अपने वर्तमान की पीड़ा को, लघुमानव हो जाने के दर्द को प्रस्तुत भर कर देना है। या प्रगतिवाद के रास्तों पर चलकर भ्रांति के हसीन सपने नहीं देखने है क्योंकि सोवियत संघ और चीन के अनुभव बताते हैं कि ऐसी हर व्यवस्था व्यक्ति के निजी व्यक्तित्व को कुचलकर खड़ी होती है। उसे अज्ञेय जैसे प्रयोगवादी और नयी कविता के समर्थकों के उस रास्ते पर भी नहीं चलना है, जिसमें व्यक्ति को सिर्फ अपनी अनुभूतियों तक सीमित करके समाज से काटने की कोशिश की जाती है। राष्ट्रवादी विचारकों का अंध समर्थन तो विवेकशील रचनाकार कर ही नहीं सकता क्योंकि वस्तुतः वह विश्वनागरिक होता है। अन्य राष्ट्रों के नागरिकों को अपना दुश्मन समझने की बेवकूफी वह नहीं कर सकता। नैतिकता जैसे विचार भी उसे नहीं बांध सकते क्योंकि वे स्वयं अमूर्त और स्पष्ट हैं। यही स्थिति प्राचीन परम्पराओं, गरिमा जैसे शब्दों की है आज का लेखक आंख मूंदकर इन्हे स्वीकार नहीं कर सकता। राजेन्द्र यादव का क्रोध इस प्रकार व्यक्त होता है।

देश की आत्मा को प्रजातंत्र के इस राष्ट्रीय झूठ ने ही शायद सबसे अधिक तोड़ा है। प्राचीनता की गरिमा झूठ है। नैतिकता ? बकवास है.... मर्यादा ? अपने बचाव और दूसरों की आँखों में धूल झोकने का नाम मर्यादा है वस्तुतः इससे बड़ा झूठ शायद आज तक गढ़ा ही नहीं गया। नयी पीढ़ी को इनमें से किसी पीढ़ी पर आस्था ही नहीं है।

इस विरोध पक्ष के बाद राजेन्द्र यादव ने स्पष्ट किया कि आज के कहानीकार द्वारा निर्मित होने वाली समानान्तरसृष्टि कैसी होनी चाहिए। वे इसे कुछ सूत्रों में स्पष्ट करते हैं।

पहली बात यह है कि लेखक के विषय का चयन कल्पना से नहीं अनुभव से होना चाहिए । किन्तु यह अनुभव बेहद निजी और विशिष्ट न होकर वह होना चाहिए जिसे हर व्यक्ति अपने-अपने तरीके से जीता है । रचनाकार को झूठी आशा नहीं तलाशनी चाहिए । पूरी ईमानदारी के साथ वास्तविक स्थितियों का रख देना चाहिए चाहे उनसे निराशा ही पैदा होती हो । उसे मानवीय संबंधों या नारी की व्याख्या करते हुए रोमानी कल्पनाओं से बचना चाहिए यदि भाईयों और बहनों में आपसी प्रतिस्पर्धा होती है तो वही दिखाना चाहिए न कि उन्हें राम और भरत बना देना चाहिए किसी भी चरित्र को हीरो या विलेन के रूप में प्रस्तुत नहीं करना चाहिए क्योंकि यथार्थ जीवन में न कोई हीरो होता है न कोई विलेन । रचना को महत्त्वपूर्ण आरम्भ या निर्णायक अंत से जोड़ने की कोशिश नहीं करनी चाहिए । क्योंकि वास्तविक जीवन में सिर्फ स्थितियाँ बदलती हैं, समस्याओं का निर्णायक अंत नहीं होता । उसे प्रतीकों का प्रयोग करना है किन्तु इस तरह नहीं जैसे अज्ञेय ने अपनी कहानी 'साँप' या सार्त्र ने अपनी कहानी 'दीवार' में किया है । प्रतीकों का प्रयोग इस तरह करना चाहिए कि यदि किसी ने मनोविश्लेषण या अस्तित्ववाद का सूक्ष्म अध्ययन नहीं किया है तो भी अपने जीवन अनुभवों के आधार पर कहानी का मर्म समझ सके । यही वह रचना प्रक्रिया है जिससे आज का रचनाकार एक समानान्तर सृष्टि को गढ़ सकता है । खुद राजेन्द्र यादव को इस बात पर संशय है कि भविष्य के लोग इस सृष्टि को किस रूप में देखेंगे । व लिखते हैं - मुझे नहीं पता इस नई दुनिया के अन्वेषक व स्रष्टा को इतिहास क्या कहना चाहेगा - विश्वामित्र या ब्रह्मा ? वह खलनायक बनकर बैठेगा या नायक ? किन्तु इस संशय के बाद उन्हें स्पष्टतः पता है कि आज के रचनाकार को इस ईमानदारी भरे विकल्प को चुनने के सिवाय कोई दूसरा रास्ता नहीं वे लिखते हैं - जिन्दगी और कहानी को दरवाजा तो खोजना ही होगा । इस वर्तमान को तो किसी न किसी भविष्य तक खींचना ही होगा । मैं समझता हूँ आज के सारे कहानी साहित्य में इस रुकी हुई जिन्दगी पर सबसे अधिक संवेदना से लिखा गया है और शायद यही संवेदना वह तार है जो भविष्य के लिए अनदेखे अनजान पुल बनेगी ।

सहायक प्राध्यापिका  
एस्. एम्. आर्. के. महिला महाविद्यालय  
नाशिक - ४२२००५



# हिन्दी का वैश्विक परिदृश्य

डॉ. शैलेशकुमार दुबे,

भाषा और अभिव्यक्ति को किसी सीमा में बांधा नहीं जा सकता। भाषा बहती धारा है। हिन्दी भाषा के परिप्रेक्ष्य में कहें तो हिन्दी आज महासागर का रूप ले चुकी है। वह सबका स्वागत करती है। संस्कृति और भाषा एक दूसरे के पूरक हैं। जहां-जहां हिन्दी भाषी गए उन्होंने भारतीय संस्कृति और भाषा का प्रचार किया। भूमंडलीकरण के इस दौर में भाषा पर भी प्रभाव पड़ा है। हिन्दी भी इससे प्रभावित हुई है।

भाषा पर भी भूमंडलीकरण के प्रभाव को देखा जा सकता है। भाषा में इसके प्रभाव को सकारात्मक रूप में ही स्वीकार करना चाहिए। आज हिन्दी को विदेशों में भी स्वीकार किया जाता है। जो अंग्रेज हम पर 200 वर्ष से अधिक शासन किए, वे भी आज अपने चुनाव में हिन्दी में नारा लगाते हैं - “फिर एक बार कैमरोन सरकार”। यह भाषा की शक्ति तो है ही। इससे भारतीयों की कर्मठता की पहचान होती है। अमरीका में भी यही स्थिति है वहाँ के राष्ट्रपति का नारा था - “अबकी बार ट्रम्प सरकार।”

श्री लल्लन प्रसाद व्यास के अनुसार “विश्व में प्रवासी भारतीयों या भारत वंशी लोगों में हिन्दी प्रचार-प्रसार की दो धाराएँ प्रवाहित हुई - एक तो उनमें जो गत शताब्दी में निर्धन मजदूर और कुली बनकर भारत से विभिन्न देशों में गए तथा दूसरी उनमें जो इसी शताब्दी में विभिन्न देशों में जाकर बस गए और जो अभी भी प्रवासी भारतीय हैं। यानी उनकी राष्ट्रीयता भारत की है। बाद वाली धारा में कुछ ऐसे सम्पन्न व्यापारी और अन्य समृद्धशाली पेशों के लोग भी हैं जिन्होंने भारत की राष्ट्रीयता छोड़कर स्थानीय राष्ट्रीयता ग्रहण कर ली है।” (विश्व में हिन्दी - खण्ड -1 - हरिबाबू कंसल - पृष्ठ क्रमांक -77)

वैश्विक स्तर पर हिन्दी आगे बढ़ रही है। जो शक्तिशाली होगा वही आगे बढ़ेगा। हिन्दी भी विश्व की भाषा बनेगी। बाजार की महत्ता हमेशा रही और भविष्य में भी रहेगी। आज भारत सबसे बड़ा बाजार है, विश्व में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपने उत्पाद बेचने के लिए हिन्दी भाषा में प्रचार-प्रसार करना ही होगा। “विश्व के बौद्धिक और चेतनशील वर्ग को संयुक्त एवं तारतम्य में रखने का दुरुह कार्य जो भाषा सम्पन्न करती है, वह अंतर्राष्ट्रीय भाषा के नाम से संबोधित होती है। अंग्रेजों द्वारा विशाल भूखंड पर आधिपत्य करने के कारण आज अंग्रेजी भाषा अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में कार्य में आ रही है, किन्तु हिन्दी भी

विभिन्न देशों का अपनी सरसता, भाव गंभीरता तथा सौष्ठव के कारण संरक्षण प्राप्त कर रही है। रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिका जैसे सम्पन्न, समृद्ध और अग्रणी राज्य भी हिन्दी के महत्त्व को स्वीकार कर चुके हैं। इसलिए बहुत संभव है विदेशी आधिपत्य की प्रतीक अंग्रेजी भाषा के स्थान पर अथवा उसकी सहभागिनी बनकर हिन्दी भी शीघ्र ही अंतर्राष्ट्रीय भाषा का रूप ग्रहण कर ले।” (हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास - डॉ. भगवत शरत चतुर्वेदी - पृष्ठ क्रमांक -101)

भाषा और संस्कार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भाषा जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, संस्कार भी उसके साथ उन्नत होता है। भाषा सांप्रदायिक नहीं होती, अगर उसे केवल भाषा के तौर पर पढ़ा जाए। कैलाश चंद्र पंत ने कहा है कि “अपनी जमीन से उखड़े हुए गिरमिटियों ने रामचरित मानस और हनुमान चालीसा के सहारे दासत्व की पीड़ादायक दिन गुजारे। राम से जुड़े देश के इन आस्थावान लोगों ने भारत की भाषा और संस्कृति से अपने-अपने रिश्तों को सुरक्षित रखा।” (राष्ट्रभाषा - अगस्त 2003 - पृष्ठ क्रमांक -12)

अतः भारतीय समुदाय ने भाषा के ही माध्यम से अपना जीवन संरक्षित किया तथा मानवता की सेवा की। मजदूर होना पाप नहीं है, वे ही भाषा को रक्षण प्रदान करते हैं। वैश्विक रूप में यदि हिन्दी आज फल फूल रही है तो इसमें उनका सबसे बड़ा योगदान है।

बाजार ने हिन्दी का जो स्वरूप तैयार किया है, उसकी आधारशिला बहुत पुरानी है। कैलास कुमार सहाय का मतव्य है कि “भारतीयों का प्रथम दल आर बूट नोट जहाज द्वारा 75 भारतीयों के साथ मॉरिशस आया था। इस दल ने बहुत अच्छा कार्य किया। सन् 1844 से सन् 1923 तक भारतीयों को मॉरिशस शर्तबंदी के रूप में जाना पड़ा।” (प्रवासी भारतीयों की हिन्दी सेवा - डॉ. कैलास कुमार सहाय - पृष्ठ क्रमांक -33) इस तरह हिन्दी की शुरुआत वैश्विक स्तर पर हुई। आज बड़े-बड़े भाषणों में बोला जाता है कि हिन्दी आगे बढ़ रही है तो इसके मूल में यही मेहनत है।

गयाना में भी हिन्दी प्राथमिक स्तर पर नहीं पढ़ाई जाती थी, किन्तु अब पढ़ाई जा रही है। डॉ. सतीश कुमार रोहरा की माने तो - “प्राथमिक स्तर अर्थात् प्राथमिक स्कूलों में हिन्दी पढ़ाने की कोई व्यवस्था नहीं है। विभिन्न एवं सांस्कृतिक संस्थाओं के आवेदन पर वर्तमान सरकार ने प्रयोग के तौर पर उन सेकंडरी स्कूलों में पढ़ाने की अनुमति दी है जिन स्कूलों में पहले से काम कर रहे अध्यापकों में से कोई अध्यापक हिन्दी पढ़ाने की योग्यता रखता हो तथा प्रधानाध्यापक के लिए इसके लिए कोई आपत्ति न हो।” (स्मारिका - सातवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन - जून 2003-पृष्ठ क्रमांक -355)

## संगोष्ठी सौरभ

---

आज वैश्विक स्तर पर हिन्दी भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण में महती भूमिका निभा रही है। अंत में मैं इन पंक्तियों के माध्यम से हिन्दी के महत्त्व को रेखांकित करना चाहता हूँ -

हिन्दी मेरी भाषा है,  
हिन्दी मेरी आशा है।  
हिन्दी का उत्थान करना,  
यही मेरी जिज्ञासा है।

हिन्दी की बोली अनमोल,  
एक शब्द के कई विलोम।  
हिन्दी हिन्द हिमालय पर शोभित,  
हर्षित होते बोल के सोम।

मीठी बोली अद्भुत बाणी संग,  
बढ़ती प्रेम पिपासा है।  
हिन्दी का उत्थान करना,  
यही मेरी जिज्ञासा है।

हिन्दी में सब काम करेंगे,  
हिन्दी का ही नाम करेंगे।  
हिन्दी सत्य वचन की देवी,  
पथ-प्रदर्शक हम बनेंगे।

जग-मग ज्योति जले हिन्दी की,  
यही कलम का ढांचा है।

- शम्भू नाथ

सहायकाचार्य,  
एस.आइ.ई.एस. कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय  
सायन, मुम्बई ।

★★★

# भाषेच्या विकासातील उपाययोजना

प्रा. ललित पाटील

भाषेचा वापर आपण नित्य करीत असतो. सकाळी उठल्यापासून ते रात्री झोपेपर्यंत जी आपल्या सोबत असते ती आपली भाषा. भाषा ही संवादाचे, विचार विनिमयाचे प्रभावी माध्यम आहे. आपण आपले विचार, कल्पना आणि भावना भाषेतून व्यक्त करतो.

### व्याख्या

भाषा म्हणजे मानवी संज्ञापनाचे ध्वनिमय साधन. भाषा म्हणजे व्यक्ती व व्यक्तिमूहाशी संपर्क साधण्याचे सर्वात सुलभ साधन आहे. भाषेचा आविष्कार बोलण्यातून झाला असल्यामुळे मौखिक भाषा पहिली भाषा व लिखित भाषा दुसरी भाषा मानली जाते. जगात आज घडीला सुमारे 6 हजार भाषा अस्तित्वात आहेत. भारतातील प्रमुख 22 भाषांपैकी 'मराठी' एक आहे. महाराष्ट्र राज्याची मराठी राजभाषा आहे. मराठी मातृभाषा असणा-या लोकसंख्येनुसार मराठी ही जगातील 15 वी व भारतातील 4 थी भाषा आहे. मराठी बोलणा-यांची एकूण लोकसंख्या 9 कोटी आहे. मराठी भाषेची जननी संस्कृत असून मराठी भाषा 9 व्या शतकापासून प्रचलित आहे. महाराष्ट्रात विविध प्रदेशात अहिराणी, व-हाडी, नागूपरी, हळबी, मराठवाडी, कोल्हापूरी, पुणेरी, कोकणी, मालवणी, चंदगडी, झाडीबोली, माणदेशी, आगरी, चित्पावनी अशा अनेक बोलभाषा व पोटभाषा बोलल्या जातात. त्यामुळे मराठी भाषेचे सौंदर्य अधिकच खुलून दिसते. परंतु इंग्रजी भाषेचे दिवसेंदिवस वाढत जाणारे आक्रमण व जागतिकीकरणाच्या झंझावातात मराठी भाषा, संस्कृति, मूल्ये नष्ट होण्याची भीती सातत्याने व्यक्त केली जाते.

युनस्कोने जगातील भाषिक समूहांना यापूर्वीच आवाहन केले आहे कि, आपापल्या भाषा संभाळा, मराठी भाषा चिरकाल टिकवायची असेल तर भाषेच्या विकासातील उपाययोजना यासारख्या विषयांवर भाषाभ्यासकांनी समीक्षकांनी संशोधकांनी, लेखकांनी ऊहापोह करणे गरजेचे आहे.

### उपाययोजना

1. **मातृभाषेतून शिक्षण** - मूल जन्माला आल्यावर त्याला त्याच्या आईकडून मिळालेली जी भाषा असते, तिला मातृभाषा असे म्हणतात. मुलांचा सर्वांगीण विकास हा मातृभाषेतून शिक्षण दिल्याने होत असतो. त्यामुळे पालकांनी आपल्या पाल्याला मराठी मातृभाषेतून शिक्षणासाठी आग्रही असावे.

2. **भाषाभिमान** - कवी सुरेश भटांच्या शब्दांत सांगायचे झाले तर, 'लाभले आम्हास भाग्य बोलतो मराठी' असा अभिमान प्रत्येक महाराष्ट्रीयन जनतेला असायला हवा. तिची अवीट गोडी चाखायला हवी. आपल्या घरादारातही इंग्रजी शब्दांपेवजी मराठीचा सर्रास वापर करावा. पुण्यामुंबई सारख्या शहरांमध्ये मराठी भाषा बोलण्याची, लाज तरुणाईला वाटू लागलेली आहे. तिला 'धेडगुजरी' करून टाकली आहे. हे कुठतरी थांबले पाहिजे.
3. **बोलीभाषांचे संवर्धन** - महाराष्ट्रात विविध प्रांतात विविध बोलीभाषा बोलल्या जातात. उच्चभ्रु वर्गाची बोलण्याची प्रमाणभाषा असते. बोली ही गांवढळ लोकांची असते. असा जो गैरसमज आहे तो मनातून काढून टाकावा. प्रमाणभाषा व बोली यातील भेद मिटवावा. मराठीचे संवर्धन, भवितव्य बोलींच्या विविधतेत, समृद्धीत सामावलेले आहे.
4. **बोलीभाषांची संमेलने** - बोलीभाषांना जर जिवंत ठेवायचे असेल तर विविध प्रांतांत सकर व कसदार लेखन बोलीतून करणा-या लेखक कविंसाठी साहित्य संमेलने भरवली जावीत. त्यामुळे पुढील पिढीला बोलींचा वारसा प्राप्त होऊन जतन होईल.
5. **ज्ञानभाषेची गरज** - ज्ञानभाषा म्हणजे ज्ञानार्जनाची, ज्ञानसंवर्धनाची व ज्ञानदेण्याची भाषा. या दृष्टीने पाहता मराठी भाषा ज्ञानभाषा होण्याची गरज आहे. कृषी, वैद्यक, उद्योग, व्यापार, विज्ञान, तंत्रज्ञान, प्रसारमाध्यमे, विधी, न्याय, उच्च शिक्षण, व्यावसायिक शिक्षण व व्यवहार क्षेत्रात मराठी भाषेचा वापर वाढविण्यासाठी आवश्यक साधन, सामग्री विकसित करणे गरजेचे आहे. मराठीचा विकासासाठी सक्ती आणि संधी या दोन्ही मार्गांचा वापर करायला हवा. महाराष्ट्र विद्यापीठ अधिनियम कायदा कलम 5 अन्वये मराठी भाषेला ज्ञानभाषा करण्याची जबाबदारी राज्यातील सर्व विद्यापीठांची आहे.
6. **भाषा मंडळांचे पुनर्जीवन** - महाविद्यालयामध्ये, विद्यापीठामध्ये एकेकाळी भाषा विकासासाठी अस्तित्वात असलेली मंडळे शेवटची घटका मोजत आहेत. त्यांच्या माध्यमातून होणारे चर्चासत्र, परिसंवाद, मुलाखती, विविध स्पर्धांचे आयोजन होत नाहीत. मंडळे ही कागदावरच राहिलेली दिसून येतात. त्यांचे भाषाविकासासाठी पुनर्जीवन व्हावे.
7. **प्रशासकीय कार्यालयात मराठीचा वापर** - भाषावार प्रांत रचना झाल्यानंतर महाराष्ट्रात मराठी भाषेला 1964 मध्ये राजभाषेचे स्थान मिळाले असले तरीही आज बँका, दवाखाने, विमा, रेल्वे, पोस्ट, न्यायालयीन कामकाजात मराठी भाषेचा वापर

होत नाही. ही मोठी शोकांतिका आहे. या विविध कार्यालयांमध्ये मराठी सक्तीची व्यवहारात करण्यात यावी.

8. **शासनाचा शैक्षणिक धोरणात बदल** - अलिकडे जिकडे-तिकडे इंग्रजी माध्यमांच्या शाळांचे पीक जोमाने बहरत आहे आणि मराठी माध्यमांच्या शाळांनी कात टाकली आहे. शासनाचा 1300 मराठी शाळा बंद पाडण्याचा डाव चाललेला आहे. 10/15 वर्ष वयाच्या माध्यमिक / उच्च माध्यमिक मराठी माध्यमांच्या शाळांना अनुदान नाही. अभ्यासक्रमात इंग्रजी व अन्य माध्यमांत 'मराठी' हा विषय ऐच्छिक आहे. यामुळे मराठीच गळचेपी होत आहे. मराठी शाळा टिकविणे, अनुदान देणे, भाषा विषय सक्तीचा करणे गरजेचे आहे. याचा विचार शासनाने करणे गरजेचे आहे.
9. **संगणकीय क्षेत्रात मराठीचा वापर** - संगणक नावाच्या छोट्या मानवनिर्मित यंत्राने जणू बौद्धिक क्रांती घडवून आणण्याच्या दिशेने पाऊल टाकले आहेत. महाजालावरून ई-टपाल, अनुदिनी, लेखन करताना युनिकोड मधून मराठीचा जास्तीत जास्त वापर करण्यावर भर द्यावा. तसेच मानवाने आपल्या भावभावना, विचार, कल्पना इतरांना सांगण्यासाठी महाजालावर स्थाने निर्माण केली आहेत, उदा. फेसबुक, व्हॉट्सअप, ऑक्यूटे, ट्युटर, मायस्केस वगैरे वापरताना मराठीचा वापर मोठ्या प्रमाणवर करण्यात यावा.
10. **पुस्तक जत्रा / ग्रंथ प्रदर्शन** - डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांनी 'वाचाल तर वाचाल' खूप वाचा आयुष्यात उपयोगी पडेल, असा संदेश दिला. पण संगणक युगात वाचनसंस्कृती कुठेतरी लोप पावत चाललेली दिसून येते. आजच्या तरुणाने वाचनाकडे पाठ फिरविलेली दिसते. भाषेचा विकास करण्यासाठी वाचन संस्कृती टिकविली पाहिजे. मोठ मोठी ग्रंथ प्रदर्शने भरविली पाहिजेत, 'पुस्तकांचे गाव भिलार' या गावासारखे उपक्रम राबविले पाहिजेत.
11. **उद्योन्मुख लेखकांना प्रोत्साहन** - राज्यातील विविध प्रांतात मराठीची सेवा करणा-या लेखक कवींना पुस्तक प्रकाशनासाठी शासनाकडून, साहित्य महामंडळाकडून जास्तीत- जास्त अनुदानाची तरतूद व्हावी. त्यामुळे लेखकांच्या हातून उत्तम व दर्जेदार साहित्याची निर्मिती मराठीतून होईल व भाषेच्या विकासात भर पडेल.
12. **मराठी सप्ताह साजरा करणे** - मराठी भाषेचे जतन व संवर्धनासाठी राज्यात 27 फेब्रुवारी मराठी दिनापासून सप्ताह साजरा करण्यात यावा. यात मराठी सण, उत्सव, मराठी संस्कृती, लोककलांचे सादरीकरण व्हावे.

13. **मराठी विद्यापीठाची उभारणी** - महाराष्ट्रातील 9 कोटी मराठी भाषिकांसाठी स्वतंत्र मराठी विद्यापीठाची उभारणी व्हावी. मराठी भाषक व अमराठी भाषकांना मराठी भाषा, तिचा इतिहास, विकास, साहित्य, समीक्षा यांचा परिचय होईल, त्यातून भाषेच जतन व संवर्धन होईल.

14. **रोजगार संधीची उपलब्धता** - मराठी भाषेतून पदवी, पदव्युत्तर, एम्. फिल., पी. एच्. डी., सेट, नेट झालेल्या तरूणांना शिक्षक / प्राध्यापक होण्याची पात्रता असूनही नोकरी नाही. बेरोजगारांची संख्या वाढत चाललेली आहे. शासन नोकरभरती करत नाही. यामुळे महाविद्यालयामधील, विद्यापीठांमधील मराठी विभाग विद्यार्थी संख्येअभावी मृतावस्थेत आहेत. काही तग धरून आहेत. भाषेला जर वाचवायची असेल तर मराठी पदवीधराला रोजगार उपलब्ध करून दिला पाहिजे.

तसेच प्रकाशन, अनुवाद, जाहिरात, पत्रकारिता, चित्रपट, मालिका, सूत्रसंचालन, शासनाचे विविध विभाग इत्यादी ठिकाणी मराठी पदवीधर तरूणाला रोजगारासाठी मराठी भाषेची आग्रही भूमिका असायला हवी. ज्यामुळे रोजगाराच्या भविष्यात संधी उपलब्ध होतील. भाषेच्या विकासात हात भार लागेल.

थोडक्यात, श्रीचक्रधरस्वामी पासून ते संत ज्ञानेश्वर-तुकारामपर्यंतानी मराठी वाङ्मयाचे दालन समृद्ध केले. मराठी भाषेची अविरत सेवा केली. भाषा, संस्कृती जोपासली. मराठी भाषेचे अनेक प्रभाव पचवत त्यातल्या अनेक शब्दांना आपल्या पोटात घेत समृद्ध केले. आज जागतिकीकरण, उदारीकरण, खाजगीकरणाच्या धोरणांवर मराठी स्वार होऊन समक्षपणे ती उभी आहे. ती अभिजात भाषा कशी होईल ? ती चिरकाल कशी टिकेल ? जतन व संवर्धन कसे होईल ? यासाठी प्रत्येक मराठी भाषकाने विकासातील उपाय योजनांची अंमलबजावणीसाठी प्रयत्नशील असावे. मराठी ही धुळीमध्ये पडलेल्या रत्नांसारखी आहे. ती चकाकणारच आहे. शेवटी माझ्या दोन ओळी.

आम्ही लाविला मराठी भाषेचा माथी टिळा । तिच्यामुळे गातो आज मंजुळ गळा ॥

संशोधक ( मराठी विभाग ),  
मुम्बई विद्यापीठ,  
मुम्बई.

★★★

### प्रेमचन्द्र प्रसाद युगीन हिन्दी कहानी : एक अवलोकन

डॉ. गीतादेवी दूबे

कहानी का अर्थ है – मन गढ़त बात, कथा । अतः कहा जाता सकता है कि ‘मन से गढ़ा हुआ या किसी वास्तविक घटना के आधार पर प्रस्तुत किया हुआ मौखिक या लिखित विवरण जिसका मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना, उन्हें शिक्षा देना अथवा किसी वस्तु स्थिति से परिचित कराना ही कहानी है ।’ यह विधा बंगला में गल्प, अंग्रेजी में शॉर्टस्टोरी एवं हिन्दी में कहानी के रूप में प्रचलित है । वस्तुतः कहानी में जीवन के किसी एक अंग या संवदना की अभिव्यक्ति होती है । कहानी का प्रमुख उद्देश्य भी कम से कम शब्दों में उस प्रभाव को व्यक्त करना मात्र है ।

भारतीय साहित्य में कहानी की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और आधुनिक साहित्य की गद्य विधाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है । संस्कृत कथा आख्यानों से प्रवहमान यह धारा प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तक कथा, गल्प, आख्यायिका लोककथा एवं लघुकथा आदि नामों से प्रचलित रही है । प्रारम्भिक कहानियों में ईश्वर, धर्म, संस्कृति, नीति, आदि की झलक मिलती है, बाद में उसने अपने स्वरूप परिवर्तन में राजा-रानी, तिलस्मी गुफाओं आदि से मुक्ति पायी एवं जीवन बोधी बनी ।

हिन्दी कहानी की विकास यात्रा का प्रारम्भ सन् 1900 ई. के आसपास होता है । प्रारम्भ में ‘रानी केतकी की कहानी’ (इंशा अल्ला खा) (1808) एवं राजा भोज का सपना (सितारे हिन्द) (1856) का नाम आता है । किन्तु इसमें कहानी के तत्त्व का अभाव है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ‘इन्दुमती’ (किशोरी लाल गोस्वामी) को ही हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना है, जिसका प्रकाशन सन् 1900 ई. में ‘सरस्वती’ पत्रिका में हुआ था । हिन्दी कहानी के इसी क्रम में शुक्ल जी कृत ‘ग्यारह वर्ष का समय’ (1903) बंग महिला कृत ‘दुलाई वाली’ (1907), गिरिजादत्त वाजपेयी कृत ‘पंडित-पंडितानि’ (1903) आदि कहानियों का नाम आता है ।

हिन्दी कहानी के विकास के अध्ययन हेतु केन्द्र बिन्दु यदि कथा सम्राट प्रेमचंद को मानते हैं तो उसे चार भागों में विभाजित कर सकते हैं – 1. प्रेमचंद पूर्व हिन्दी कहानी, 2. प्रेमचंद युगीन हिन्दी कहानी, 3. प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी कहानी एवं 4. नई कहानी।

प्रेमचंद पूर्व जिसे द्विवेदी युग कहा जा सकता है उस समय उपर्युक्त कहानियों के अतिरिक्त किशोरी लाल गोस्वामी कृत ‘गुलबहार’, वृन्दावन लाल वर्मा कृत ‘राखी बन्ध भाई’

आदि है। सन् 1912 ई. में प्रसाद की कहानियों का संग्रह 'छाया' नाम से प्रकाशित हुआ। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की तीन कहानियाँ चर्चित हैं - 'सुखमय जीवन', 'बद्धू का कांटा', एवं 'उसने कहा था' (सरस्वती 1915) जिसमें आदर्श प्रेम का एवं बलिदान का जिक्र है। द्विवेदी युगीन पत्रिकाओं में जयशंकर प्रसाद द्वारा सम्पादित 'इन्दु' पत्रिका भी कहानी विधा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रसाद की कहानी 'ग्राम' (1911) एवं राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह रचित कहानी 'कानों में कंगना' (1913) की प्रामाणिकता 'इन्दु' के कारण ही प्राप्त हुई। द्विवेदी युगीन कहानियाँ आदर्श की गरिमा से युक्त भारतीय संस्कृति की परिचायिका हैं। आदर्शवादिता, प्रेम, मानवीय आस्था आदि की दृष्टि से श्रेष्ठ है। कथानक, चरित्र निर्माण एवं उद्देश्य की दृष्टि से सफल होना पर भी अतिरंजना और कल्पनाप्रियता अधिक है।

हिन्दी कहानी साहित्य में प्रेमचन्द का आविर्भाव एक महत्त्वपूर्ण घटना है। हिन्दी कहानी के प्रकार एवं परिमाण दोनों दृष्टियों से वास्तविक विकास प्रेमचन्द युग में ही हुआ। कहानी के क्षेत्र में उनका स्थान अद्वितीय रहा है। प्रेमचन्द पहले 'नवाबराय' के नाम से उर्दू में लिखते थे। उर्दू में लिखा हुआ उनका कहानी संग्रह 'सोजेवतन' (1907) था। स्वतन्त्रता की भावना से युक्त होने के कारण अंग्रेज सरकार ने इस संग्रह को जब्त कर लिया था। बाद में वे हिन्दी में प्रेमचन्द नाम से लिखने लगे और यही नाम अमर हो गया। उन्होंने लगभग 300 कहानियाँ लिखी। डॉ. नगेन्द्र लगभग 200 कहानियाँ मानते हैं। उनकी पहली कहानी 'पंचपरमेश्वर' (1916) एवं अंतिम कहानी 'कफन' (1936) है। प्रेमचन्द की सभी कहानियाँ 'मानसरोवर' के आठ खण्डों में संकलित हैं। उनके कहानी लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हिन्दी कहानी के विकास की प्रायः सभी अवस्थाएँ दृष्टिगत होती हैं। उनकी प्रारम्भिक कहानियों में किस्सा गोई, आदर्शवाद एवं सोद्देश्यता अधिक है। साथ ही इन कहानियों का कच्चापन और उसमें यथार्थ की कमजोर पकड़ स्पष्ट है। 'पंच परमेश्वर', 'आत्माराम' (1920) 'प्रेरणा', 'नमक का दारोगा', बड़े घर की बेटी आदि कहानियों का मूल उद्देश्य है - सत्य की जीत एवं झूठे की हार। कालान्तर की कहानियों में जैसे - पूस की रात (1930), कफन (1936) तक आते उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया और वे जीवन के यथार्थ से जुड़ गए। 1930 के बाद की कहानियों में मनोवैज्ञानिक विवेचन, यथार्थ संवेदना, आकस्मिकता, तीव्रता और लेखक का अद्भुत संयम और भी अधिक दिखाई पड़ता है।

प्रेमचन्द की कहानियाँ अपने आसपास के सामाजिक परिवेश से जुड़ी हुई हैं उनकी वे कहानियाँ जिनमें शोषण का विरोध है, आक्रोश है, द्वितीय उत्थान की कहानी की सकते हैं। महाजनी सभ्यता में समाज का शोषण कितना भयावह है इसका अवलोकन 'सवा सेर

गेहूँ' में किया जा सकता है। प्रायः उनकी कहानियाँ ग्राम जीवन से सम्बन्धित हैं। किन्तु बहुत सी कहानियाँ कस्बाई जिन्दगी, सत्याग्रह, आन्दोलन, स्कूल और कॉलेज के परिवेश एवं जमींदारों, साहूकारों, क्लर्कों और उच्चपदाधिकारियों की समस्याओं आदि की देन हैं। प्रेमचन्द की कहानी के विकास का तीसरा उत्थान यथार्थवाद है। जिसे उत्कर्ष काल कह सकते हैं। 'सद्गति', 'ईदगाह' (1933), 'नशा' (1934), 'पूस की रात' (1930), 'कफन' (1936) आदि कहानियाँ यथार्थवादी हैं। देशप्रेम, समाज, सुधार, नारी उत्थान, हृदय परिवर्तन, मानवीय क्रिया-व्यापार, सामाजिक शोषण, राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं नैतिक उत्थान आदि को व्याख्याचित कर कथा सम्राट प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी को अर्थ और आयाम को विस्तार दिया। साथ ही पारिवारिक विघटन, वैवाहिक संस्था के बदलते प्रतिमान, नारी चेतना की सार्थकता, बालजगत की विविध अभिव्यक्ति आदि की दृष्टि से इनकी कहानियाँ महत्वपूर्ण, रचना प्रक्रिया, जीवन दृष्टि एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से भी विकासोन्मुख एवं समाजोन्मुख हैं। भाषा की दृष्टि से प्रेमचन्द की कहानियाँ बेजोड़ हैं। भाषा पात्रानुकूल एवं लोकोक्ति मुहावरों से युक्त है। उर्दू अंग्रेजी के चलते शब्दों का प्रयोग काफी हुआ है।

प्रेमचन्दयुग के प्रतिभाशाली कथाकारों में जयशंकर प्रसाद का नाम भी शीर्ष पर है। प्रसाद के पाँच कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। छाया, प्रतिध्वनि (1926), आकाशदीप (1929), आँधी (1931), एवं इन्द्रजाल (1936)। कुल कहानियाँ लगभग 69 हैं। कहानीकार के रूप में प्रसाद की प्रकृति प्रेमचन्द से अलग है। जहाँ प्रेमचन्द का रुझान जीवन के चारों ओर फैले यथार्थ में था वहाँ प्रसाद रूमानी स्वाभाव के व्यक्ति थे। उनकी कहानियों में जीवन के सामान्य यथार्थ को कम और स्वर्णिम अतीत के गौरव, मसृणता, भावुकता, कल्पना की ऊँची उड़ान तथा काव्यात्मक चित्रण को अधिक महत्व मिला है। उनकी कुछ कहानियों में ऐतिहासिक देशकाल एवं वातावरण की सफल प्रस्तुति की गयी है। प्रसाद की कुछ कहानियों संस्कृत गद्य काव्य के निकट हैं जैसे - चक्रवर्ती का स्तम्भ, खण्डहर की लिपि, पत्थर की पुकार, प्रतिमा आदि। उनकी बाद की कहानियों में भावुकता एवं चित्रमयता के साथ मनोविज्ञान को भी स्थान मिला है - आकाशदीप, देवदासी, आँधी, मधु इन्द्रजाल एवं सालवती आदि कहानियों में मानसिक उलझन के चित्रण में सफलता मिली है। प्रेम, करुणा, त्याग, बलिदान इनकी कहानियों के विषय हैं। उच्चकोटि के नारी चरित्र की सृष्टि में प्रसाद अद्वितीय हैं जो निश्छल पम एवं त्याग से पाठकों पर अमिट प्रभाव छोड़ती हैं। 'आकाशदीप' की चम्पा, 'देवरथ' की सुजाता, 'पुरस्कार' की मधूलिका आदि प्रसाद की अन्यतम नारी सृष्टि हैं। नियति और समाज से एक साथ संघर्ष करती नारी का

ऐसा चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। इन अच्छाईयों के बाद भी प्रसाद की कहानियां आधुनिक कहानियों से सही रूप में नहीं जुड़ पाती हैं।

प्रसाद की कहानियों की भाषा संस्कृत निष्ठ तत्सम है। उसमें आलंकारिकता एवं काव्यात्मकता का समावेश है। भाषा पात्रानुकूल है। ये कहानियां सोद्देश्य हैं। त्याग, बलिदान, राष्ट्रिय भावना से ओतप्रोत प्रसाद की कहानियां आदर्शवादी हैं तथा उनका उद्देश्य पाठकों को संदेश देना होता था।

इसी युग के विश्वम्भर नाथ शर्मा और कौशिक विशेष उल्लेखनीय हैं। गल्प मन्दिर, मणिमाला, कल्लोल आदि विश्वम्भर की श्रेष्ठ कहानियां हैं। 'सुदर्शन सुधा', 'सुदर्शन सुमन', 'पुष्पलता', 'गल्पमञ्जरी' आदि कौशिक के कहानी संग्रह हैं। 'हार की जीत' (1920) इनकी प्रथम कहानी है। इन दोनों कहानीकारों में प्रेमचन्द की तरह सामाजिक मूल्यों की स्थापना के प्रयत्न मिलते हैं। यथार्थवाद को लेकर समानता नहीं मिलती है। इसी प्रकार प्रसाद की परम्परा में रायकृष्णदास, चतुरसेन शास्त्री और विनोद शंकर व्यास प्रमुख हैं। अम्बपालिका, वाणवधू, हल्दीघाटी आदि चतुरसेन की इतिहास प्रधान कहानियां हैं। रायकृष्णदास की कहानियां भावप्रधान हैं। विनोद शंकर व्यास की कहानियां प्रसाद की तरह प्रेम, करुणा आदि के मनोभावों से युक्त हैं। समाज के नग्न यथार्थ को प्रस्तुत करने वाले पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र प्रमुख हैं। उनके कहानी संग्रह चिनगारियां, शैतान मंडली, इन्द्रधनुष, निर्लज्जा आदि में सामाजिक शोषण एवं कुप्रथाओं के प्रति तीव्र विरोध है। चिनगारियां को सरकार ने जब्त कर लिया था। इसी समय के शिवपूजन सहाय हिन्दी के पहले आंचलिक कथाकार माने जा सकते हैं।

इसके पश्चात् प्रेमचन्दोत्तर कहानी साहित्य का आगमन होता है। इस युग की कहानी मनोवैज्ञानिक सत्य एवं यथार्थ से सम्बन्धित है। जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय प्रमुख कहानीकार हैं। भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, राहुल सांस्कृत्यायन की कहानियां भी श्रेष्ठ हैं। 'फणीश्वरनाथ' नाथ रेणु (आंचलिक) रांगेय राघव (मार्क्सवादी) एवं हरिशंकर परसाई (व्यंग्य) की कहानियां अलग-अलग विषयों पर आधारित श्रेष्ठ कहानियां हैं। सुभद्राकुमारी चौहान, शिवरानी देवी, उषादेवी, मित्रा प्रमुख महिला कहानीकार हैं। इस प्रकार कहानी का उत्तरोत्तर विकास होता गया और कहानी के क्षेत्र में नये नये प्रयोग होने लगे जिसमें नई कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी, सहज कहानी, समकालीन कहानी, समानान्तर कहानी आदि आन्दोलन आए और कहानी विधा को निरन्तर आगे बढ़ाने का काम किया।

**सन्दर्भ ग्रन्थ**

## संगोष्ठी सौरभ

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र ।
2. हिन्दी भाषा और साहित्य कृतियां - दिव्यांशु ।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. जयनारायण वर्मा ।
4. अन्तर्जाल ।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।
6. हिन्दी शब्दकोश ।
7. प्रेमचन्द : कहानी शिल्प - डॉ. गौतम सचदेव ।

संविदाध्यापका ( हिन्दी विभाग )  
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,  
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ  
विद्याविहार, मुम्बई



## Moral Dilemmas in Graham Greene's *The Quiet American*

Dr. Shweta Sood

In this paper an attempt has been made to consider various moral dilemmas within the novel. The choices of which matters to discuss are not purely an objective task, and there are moral problems which some ethical theories would not consider problems at all. However, by using the ethical theories it is possible to move closer to a more objective discussion of behaviors and actions within *The Quiet American* which may be considered either good or bad in an ethical sense. As mentioned, the entire story is from the perspective of the first-person narrator, Fowler. When possible other characters' voices are given a forum in the discussion. However, even when a character does state something this is also told through a lens. For this reason, the lack of agency should be noted and this should also be taken into consideration in the analysis. Nonetheless, no story is very engaging if we can be sure of everything and all the information is handed to us on a platter. Therefore, the task of analyzing the moral dilemmas is still very much relevant to uncovering a deeper meaning, even if it requires reading between the lines. Lying "I felt an unreasoning dislike of telling more lies than were needed", considered Fowler (Greene, 173). It has already been established that Fowler does not always tell the truth, as he himself admits in the quote above. This provides emphatic effect due to the seriousness that ought to be associated with a lie, especially when it pertains to the actions leading up to Pyle's murder. Returning to lies within *The Quiet American*, at the very beginning of the book the reader is made aware of deception. As Fowler and Phuong are waiting for the arrival of Pyle, Fowler wonders why Pyle has not been in contact but soon realizes that he has been murdered. "I told myself, he might be detained for some reason...but surely in that case he would have telephoned" (Greene, 3). So, Fowler was well-aware that Pyle would not be returning and he quickly presumed that he was most likely dead, yet he still comforted Phuong assuring her that nothing was wrong. "It's clear as daylight. Pyle knows I smoke a few pipes before bed, and he doesn't want to disturb me", Fowler said, adding that "he'll be around in the morning" (Greene, 5). In the meantime, Fowler was privately thinking that "Pyle had diminished", even though he assured Phuong that everything is as normal. Clearly, this is a lie

because even though it might have taken a moment of deliberation, Fowler was certain that Pyle was dead and attempted to deceive Phuong.

Another example of lying in *The Quiet American* can be seen in Fowler's lying by omission or failure to tell relevant facts to Phuong. Fowler decides not to tell Phuong that he has been relocated back to England and he will be leaving his life and her behind in Asia. He expressed regarding his imminent departure, that "there was no point in telling Phuong" because it "would be to poison the few months we had left with quarrels and tears" (Greene, 63). He further explained that he would not even make the necessary travel arrangements until last moment, and thus further conceal the truth for she might have "a relation in the immigration office" which would potentially reveal that he is leaving the country (Greene, 63). He not only consciously withholds information in this situation, but he also justifies this action because it would likely result in unpleasant feelings and he maintains his secrecy by attempting to safeguard this undisclosed information.

We see that another moral philosophy can approach Fowler's dilemma of lying with a dissimilar result. For instance, we can approach Fowler's lie through utilitarianism. As "actions are right in proportion as they tend to promote happiness" and "wrong as they tend to produce the reverse of happiness" (McGinn, 283), in avoidance of quarrels and tears there is a promotion of happiness or at least, the avoidance of unhappiness. Thus, the dodging of these confrontations is arguably desirable because it has a positive consequence in that Fowler and Phuong are happier in the short-term than if he did not lie. So by means of lying, Fowler cultivates a situation in which there is an avoidance of negativity. Based upon these facts, Fowler is morally correct in his choice to lie, or at least justified. After his lie, both he and Phuong are happy, or at the very least, more happy than unhappy. As a result, there is the "greatest happiness of the greatest number" (Hospers, 354). Yet, we can continue on this line by wondering how long-lasting is this happiness? In the end, finding out later would bring her more distress and the only one really benefiting is Fowler himself. So, it appears as if his main concern was to retain the opportune situation for his own benefit, that of having Phuong for his needs. After all, if she were sad or angry upon finding out about his departure, she might not be in a mindset that would be beneficial for Fowler. He himself stated that her needs are not as important to him as his own, and it is of primary importance to keep her around (Greene, 123).

Moreover, Fowler supposed that in keeping her content "she won't run away from home" which is convenient and "very secure" for an "aging

man” like himself (Greene, 95). In light of Fowler’s motivations, ethical egoism fits well. His motivations appear to hinge on his own comfort and so there is a shift from thinking of the well-being of others to directing that energy into fulfilling his own personal contentment. As discussed, many of his lies have negative consequences to others in the story, but they also seem to be difficult for Fowler himself on a psychological level. In effect, Fowler’s lies hurt everyone involved and result in more harm than expected and from this perspective, do not fit with a good utilitarian way of acting.

Adultery is a key concern in *The Quiet American* as Fowler was involved with a woman that was not his wife, while his wife was back in England obstinate about granting him a divorce. In the case of Fowler, he appears to benefit well from his affair with Phuong and enjoys the pleasures and comforts that he receives, especially when considering that his advancing age makes it difficult to chase other women and Fowler was terribly afraid of “old age, an editor’s chair, loneliness” (Greene, 102). Pyle questioned the very meaning of the relationship and told Fowler that the fact he is conducting himself so uncaringly indicates that what he feels for Phuong “is not love”. (Greene, 123) In a sense, Pyle is making a moral judgment on Fowler by equating care for others with love. If Fowler does not have love for Phuong, and he is merely using her for his physical pleasures, then his motivations are morally wrong. Fowler however, retorted and explained that “perhaps it’s not your way of love” (Greene, 123). Pyle seems to have the shallow traits of a good man but he lacks a deeper critical thought-process which could bring about a greater moral understanding. Pyle’s values seem to be in line with respectable duties or traits but these are only artificial principles and he arguable lacked a greater understanding of the world or people around. Namely, Pyle was unable to think critically about people and thus potentially unaware of key moral concerns. Fowler repeatedly describes Pyle with the use of the word innocent and that his first instinct was to protect Pyle from his own innocence. Fowler stated: “It never occurred to me that there was a greater need to protect myself” (Greene, 29).

*The Quiet American* shows an almost prophetic vision on the future of the United States’ involvement in Southeast Asia as depicted in the form of Alden Pyle. Fowler seems to be concluding that not only is Pyle unable to be morally reasonable but he is also morally dangerous. Pyle, as described previously, is an immature and “innocent” character. But, if that is indeed the case, should Pyle be held responsible for his moral actions? Fowler

asserted regarding Pyle that “he’ll always be innocent, you can’t blame the innocent, they are always guiltless” (Greene, 15).

In *The Quiet American*, Fowler is, at the very least, an accomplice in Pyle’s murder, and arguably, he single-handedly orchestrated the idea of killing Pyle and facilitated this act. Fowler did not believe the police would “dare to touch an American”, so he became open to other suggestions from Heng (Greene, 166). Because Pyle was involved in needless violence and we can presume further expected deaths of civilians if his activities continue, then we can posit that by removing Pyle from the equation, atrocities are also thus avoided or prevented. For that reason, Pyle alone is responsible for his own death since he was not only involved, but profoundly involved, according to Fowler’s mentality. It is clear, however, that Pyle had a role in the civilian deaths in the square, yet as discussed, he was most likely following orders from some superiors in the United States. There is only one person that is happier as a fact that Pyle is gone, and that would be Fowler. Again, this brings to mind that Pyle’s murder mostly suits the purpose of solving many problems for Fowler (for example, removing the competitor in gaining Phuong’s romantic favor) and thus is ethically egoist in nature, if justified at all. If he admits his tension was over as Pyle was dead, then he is inadvertently admitting that he had him killed primarily for his own benefit.

The idea of nation proves an important aspect of characterization as well as justification for behavior within a moral framework. Despite the setting in Vietnam, the Vietnamese influence is the weakest facet of the story. Nonetheless, Fowler continually insisted that he was not involved in any of the region’s war, which becomes even more apparent when Pyle and Fowler are stuck in a conflict-torn region and their lives were at great risk. Nonetheless, Vigot does support Fowler’s perspective that Pyle’s politics were “doing a lot of harm” (Greene, 11). We can see that Fowler’s view is not unique in that Pyle’s actions, in the name of the United States, are morally problematic. Even at the inquiry into Pyle’s death, Fowler has to repeat to yet again that “I’m not involved” to Vigot (Greene, 20). Despite his insistence, it is clear that he is indeed emotionally involved.

To sum up, the various moral dilemmas in *The Quiet American* have been discussed through the lens of ethical philosophy. One of the key considerations has been Fowler’s consistent lying to other characters in the novel. It is unclear to what degree that he deceives us (as a narrator), however all of his comments are suspect since he freely admits deception at many turns.

### References

1. Adkins, John. Graham Greene. London: Calder and Boyars. 1966. Print.
2. Alberes, R.M. "Is There a New Ethic in Fiction?" Yale French Studies 8: 9-16. 1951. Print.
3. Bergonzi, Bernard. A Study in Greene. Oxford: Oxford University Press. 2006. Print.
4. Booth, Wayne C. The Rhetoric of Fiction. 2nd ed. Chicago: The University of Chicago Press. 1983. Print.
5. Brennan, Michael G. Graham Greene: Fictions, Faith and Authorship. London: Continuum. 2010. Print.
6. Bunnin, Nicholas and E.P. Tsui-James, eds. The Blackwell Companion to Philosophy. 2nd ed. Oxford: Blackwell Publishers. 2003. Print.
7. Clausen, Christopher. The Moral Imagination: Essays on Literature and Ethics. Iowa City: University of Iowa Press. 1986. Print.
8. Donaghy, Henry J. Graham Greene: An Introduction to his Writings. Amsterdam: Rodopi. 1983. Print.
9. Falikowski, Anthony F. Moral Philosophy: Theories, Skills, and Applications. New Jersey: Prentice Hall. 1990. Print.
10. Greene, Graham. 2004. The Quiet American. London: Vintage. 1955.
11. Gregor, Mary, ed. and trans. The Metaphysics of Morals. Cambridge: Cambridge University Press. 1996. Print.
12. Hospers, John. An Introduction to Philosophical Analysis. 3rd ed. London: Routledge. 1990. Print.
13. Hynes, Samuel Lynn, ed. Graham Greene: A Collection of Critical Essays. New Jersey: Prentice-Hall. 1973. Print.
14. Kerr, Douglas. "The Quiet American and the Novel." Studies in the Novel 38, 1: 95-107. 2006. Print.
15. Mann, Jesse A. and Gerald F. Kreyche, eds. Approaches to Morality: Readings in Ethics from Classical Philosophy to Existentialism. New York: Harcourt, Brace & World. 1966. Print.
16. McGinn, Colin. Ethics, Evil and Fiction. New York: Oxford University Press. 1997. Print.
17. Shafer-Landau, Russ, ed. Ethical Theory: An Anthology. Oxford: Blackwell. 2007. Print.
18. Siebers, Tobin. The Ethics of Criticism. New York: Cornell University Press. 1988. Print.

19. Skorupski, John. "Ethics" in The Blackwell Companion to Philosophy. 2nd ed. Eds Nicholas Bunnin and E.P. Tsui-James. Oxford: Blackwell Publishers. 2003. Print.

**Contract Teacher (English)**  
**Rashtriya Sanskrit Sansthan**  
**(Deemed University)**  
**K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham**  
**Vidyavihar, Mumbai - 77**

★★★

# भारतीय लोकतंत्र में राष्ट्रनिर्माण एवं चुनौतियाँ

डॉ. रंजय कुमार सिंह

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। 15 अगस्त, 1947 से पहले भारत ब्रिटिश साम्राज्यवाद का एक अपनिवेश था। साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए राष्ट्रीय आंदोलन का एक लम्बा संघर्ष चला जिसके परिणामस्वरूप गणतन्त्र भारत का उदय हुआ। अंग्रेजों ने अपनी कूटनीतिक रणनीति के तहत भारत को धर्म के आधार पर दो हिस्सों में बांट दिया। जिसके कारण बड़ पैमाने पर हिंसक घटनाएँ घटी और धर्मनिरपेक्षता का अस्तित्व खतरे में पड़ गया। आजाद भारत के सामने लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में गरीबों, पिछड़ों तथा कमजोर वर्ग के लोगों को साक्षर करना कोई आसान काम नहीं था। स्वतंत्र भारत के सामने चुनौतियों की विशाल दीवार खड़ी थी। धर्म के आधार पर विभाजन की प्रक्रिया में त्रासदी, हिंसा, प्रतिहिंसा तथा आत्मिक पीड़ा की कहानी गढ़ चुकी थी। लोगों में नफरत, अमन-चैन तथा पलायन, अविश्वास और संदेह का माहौल पैदा हो चुका था। भारतीय शासन के सामने सबसे बड़ी चुनौती संप्रभुता, लोकतांत्रिक व्यवस्था, धर्मनिरपेक्षता और समाजवादी गणतन्त्र की रक्षा का था। राष्ट्रीय नेताओं ने इस विकट संकट की घड़ी में भारत को एक मजबूत राष्ट्र के रूप में स्थापित करने के लिए संकल्प लिए। भारतीयों के सामने तीन चुनौतियाँ प्रमुख थी - 1. एकता एवं अखण्डता, 2. लोकतंत्र और 3. सामाजिक-आर्थिक न्याय।

### एकता एवं अखण्डता -

भारत का विभाजन मुस्लिम लीग के द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त के आधार पर हुआ था। पंजाब व बंगाल के प्रान्तों को विभाजित कर दिया गया था। मुस्लिम बहुसंख्य वाले पंजाब के पश्चिमो भाग को और बंगाल के पूर्वी भाग को मिलाकर पाकिस्तान बना दिया गया था। यहाँ तक कि इन क्षेत्रों में हिन्दुओं और मुसलमानों की अदला-बदली भी हुई थी। भारतीय समाज में जातियाँ और उपजातियाँ विद्यमान पहले से ही थी। परन्तु अंग्रेजों ने फूट डालो राज करो की नीति के कारण और आपसी दूरियाँ ओर बढ़ा दी। लोग अपने को भारतीय कहने से पहले अपनी जाति से सम्बन्ध होना अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे। यह भारत की राष्ट्रीय एकता, अखण्डता तथा संप्रभुता के लिए बाधक हो सकती थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत के सामने सांप्रदायिकता की समस्या भी बड़ी बिकट थी। परिणाम यह हुआ कि भारतीय राजनीति को सांप्रदायिकता ने बहुत कुप्रभावित किया और बहुत से नेता जाति व धर्म

के नाम पर अलग प्रतिनिधित्व की मांग करने लगे । भारत और पाकिस्तान दोनों ही ओर से धर्म के आधार पर जनसंख्या की अदला बदली हुई थी । पंजाब और बंगाल दोनों प्रान्तों में हिन्दू और मुसलमान परिवार एक साथ पड़ोसी की तरह भाई भाई बनकर रहते थे वे ही अब एक साथ एक रात भी रहना अपने अपने को कठिन हो गया ।

### लोकतंत्र

भारतीयों के लिए आजादी का महत्व जनता का शासन स्थापित करना था । इसलिए आजादी के बाद राष्ट्र निर्माण की दूसरी बड़ी चुनौती लोकतंत्र स्थापित करने की थी । भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी दी गई है और प्रत्येक नागरिक को मतदान का अधिकार दिया गया है । भारत ने संसदीय शासन प्रणाली पर आधारित प्रतिनिधित्वमूलक लोकतंत्र को अपनाया । 26 जनवरी, 1950 को लागू भारतीय संविधान भारत को एक सार्वभौम लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित किया गया । जिसमें सभी भारतीयों को मौलिक अधिकारों के साथ साथ उनकी सुरक्षा की गारंटी भी निश्चित की गई ।

### सामाजिक आर्थिक न्याय

आजाद भारत के समय समाज का एक बड़ा वर्ग अछूत समझा जाता था जिसे अपने जीवन यापन तथा विकास के लिए सामान्य सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं थी । भारतीय नेताओं के सामने इन दलित, उपेक्षित, अभावग्रस्त वंचित तथा पिछड़ वर्गों का विकास करने की समस्या बड़ी गंभीर थी । इसके साथ साथ आर्थिक असमानता की समस्या भी विकराल थी । कुछ लोग अत्यन्त धनी थे तो अधिकतर लोग बहुत ही गरीब थे । अमीरी और गरीबी के बीच बहुत अधिक विषमता थी । इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीयता के सामने तीसरी चुनौती थी ऐसे विकास की जिससे सम्पूर्ण समाज का कल्याण हो, न कि किसी एक वर्ग का । इस मोर्चे पर भी संविधान में यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि सब की साथ समानता का बर्ताव किया जाए और सामाजिक रूप से वंचित वर्गों तथा धार्मिक-सांस्कृतिक अल्पसंख्यक समुदायों को विशेष सुरक्षा प्रदान की जाए । संविधान ने 'राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों' के अन्तर्गत लोककल्याण के उन लक्ष्यों की भी स्पष्ट कर दिया था जिन्हें राजनीति को जरूर पूरा करना चाहिए । अब वास्तविक चुनौती आर्थिक विकास तथा गरीबी समाप्त करने के लिए कारगर नीतियों को तैयार करने की थी।

‘द्वि राष्ट्र सिद्धान्त’ के आधार पर भारत का विभाजन धर्म था जिसके कारण भारत राष्ट्र निर्माण में कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हुई जो निम्न है -

**भौगोलिक समस्या -**

सम्पूर्ण भारत में कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं था जिसमें मुस्लिम आबादी अधिक और अलग हो और उसे भारत से अलग पाकिस्तान के रूप में स्थापित कर दिया जाए। भारत में दो प्रान्त ऐसे थे जहाँ मुस्लिम आबादी में वे प्रान्त पंजाब और बंगाल था। परन्तु पश्चिम में तो बंगाल पूर्व था। प्रान्तों के अतिरिक्त कई जिले भी ऐसे ही थे जिनमें मुसलमान अधिक थे। विभाजन के बाद पंजाब से जुड़ प्रदेश पश्चिमी पाकिस्तान और बंगाल और असम से पृथक किए जानेवाले क्षेत्रों को 'पूर्वी पाकिस्तान' का नाम दिया गया। आजादी के 70 वर्षों के बाद भी भारत पाक भौगोलिक सीमा को चुनौती वैसे ही बरकरार बना हुआ है। जिसका समाधान करना जरूरी है।

### उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त की समस्या

दूसरी समस्या थी कि बहुत से मुस्लिम आबादी वाला इलाका पाकिस्तान बनने के विरुद्ध था। उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त इसका ज्वलंत उदाहरण था जहाँ पर बादशाह खान अब्दुल गफ्फार खाँ के नेतृत्व में हजारों लोगों ने विभाजन का विरुद्ध संघर्ष किया। वे मुस्लिम लीग के खिलाफ थे और देश का बंटवारा नहीं चाहते थे। खान अब्दुल गफ्फार खाँ के सलाह के बिना कांग्रेस ने देश के विभाजन को स्वीकार कर लिया।

### आम लोगों की त्रासदी

पंजाब और बंगाल में जो बहुसंख्याक मुस्लिम आबादी वाले प्रान्त थे, उनके बहुत से क्षेत्र या उपक्षेत्र ऐसे थे जहाँ गैर मुस्लिम आबादी बहुसंख्य में थी। प्रश्न पैदा हुआ कि उन क्षेत्रों को क्या किया जाए। विभाजन के अन्तर्गत यह तय माना गया कि इन दोनों प्रान्तों में भी बंटवारा धार्मिक बहुसंख्यकों के आधार पर होगा और इसमें जिले अथवा उससे निचले स्तर के प्रशासनिक हलके को आधार माना जाएगा। आजादी के समय तक बहुत लोगों को नहीं पता था कि वे भारत में हैं अथवा पाकिस्तान में। देश के अन्य प्रान्तों विशेषकर उत्तरप्रदेश, बिहार, दिल्ली, महाराष्ट्र और गुजरात में बहुत बड़ी संख्या में मुसलमान रहते थे। पाकिस्तान में जो प्रदेश शामिल किए जाने थे वहां हिन्दुओं और सिखों की संख्या काफी ज्यादा थी।

### अल्पसंख्यकों की समस्या

भारत का विभाजन धर्म के आधार पर हुआ था, इसलिए दोनों ओर के रहने वाले अल्पसंख्यक वर्ग असमंजस की स्थिति में थे। पश्चिम पंजाब के हिन्दू पाकिस्तान जाने पर उनका क्या होगा इसी प्रकार पूर्वी पंजाब में रहनेवाले मुसलमान ऐसा ही सोचते थे। क्योंकि भारत विभाजन से पहले कभी किसी देश का विभाजन धर्म के आधार पर नहीं हुआ था।

### विस्थापन की समस्या

## संगोष्ठी सौरभ

---

भारत विभाजन की योजना में यह नहीं कहा गया कि दोनों भागों से अल्पसंख्यकों का विभाजन भी होगा। विभाजन से पहले ही दोनों देशों के रहने वाले इलाकों में हिन्दू-मुस्लिम भड़क उठे। पश्चिमी पंजाब में रहने वाले अल्पसंख्यक गैर मुस्लिम लोगों को अपना घर-बार, जमीन जायदाद, छोड़ अपनी जान बचाने के लिए वहाँ से पूर्वी पंजाब तथा भारत आना पड़ा और इसी प्रकार मुसलमानों को पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी बंगाल छोड़कर पाकिस्तान जाना पड़ा। विभाजन के कारण नागरिक अपने ही देश में एक रात में शरणार्थी बन गये। दोनों देशों में अल्पसंख्यकों पर सांप्रदायिक हमले हुए, पलायन करने वालों को चलती रेलगाड़ियों में रोककर मौत के घाट उतारा गया। सरकारी आकाड़ा के अनुसार 80 लाख लोगों को अपना घर-बार छोड़कर सीमा पार जाना पड़ा और 10 लाख लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा। जनसंख्या का स्थानान्तरण अनियोजित था क्योंकि किसी ने नहीं सोचा था कि विभाजन के बाद आबादी की भी अदला बदली होगी। आजादी के 70 वर्ष बाद भी शरणार्थी और सीमा की समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो सका जो राष्ट्र के लिए अभी गंभीर चुनौती है।

### प्राशासनिक एवं आर्थिक कठिनाइयाँ

विभाजन की प्रक्रिया में भारत की भूमि का ही बंटवारा नहीं हुआ बल्कि भारत की सम्पदा का भी बंटवारा हुआ। कार्यालयों के मेज-कुर्सी, टाइपराइटर तथा अन्य स्टेशनरी के साथ सेना एवं प्रशासनिक अधिकारियों का भी बंटवारा हुआ।

### अन्य समस्याएँ

अधिकांश मुसलमानों को पाकिस्तान जाने के बाद 1951 के जनगणना के आधार पर भारत में 12 प्रतिशत मुस्लिम बच गए। भारत में एक विचारधारा वर्ग के लोगों ने भारत को हिन्दू राष्ट्र घोषित करने की मांग की। किन्तु भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने समझदारी और बुद्धिमानी का परिचय देते हुए मुसलमानों के आलावा सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी और यहूदी जनसंख्या का सम्मान किया और भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र का दर्जा दिया। किन्तु धर्म के आधार पर आज भी भारत में साम्प्रदायिक राष्ट्र के लिए चुनौती बना हुआ है।

### शरणार्थियों के पुनर्वास की चुनौती -

आजादी एवं विभाजन के कारण भारत को विरासत के रूप में शरणार्थियों के पुनर्वास की समस्या विरासत में मिली। यह समस्या इतनी विकराल थी कि दोनों ओर के नागरिकों को पुनर्वास के कारण लाखों लोगों को जान गवानी पड़ी। पुनर्वास की समस्या से भारत सरकार ने दूरदर्शिता का परिचय दिया और पुनर्वास मंत्रालय का गठन कर शरणार्थियों

को अस्थायी कैम्प लगाकर उनकी तत्काल व्यवस्था की गयी । उन्हें सभी प्रकार के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकार प्रदान किए गए । 1955 में नागरिकता कानून बनाकर इन शरणार्थियों को भारत का नागरिक बनाया गया । किन्तु शरणार्थियों की समस्या आज भी राष्ट्र के लिए चुनौती है क्योंकि आसाम, पश्चिम बंगाल, हिमाचल और जम्मू कश्मीर में समस्या बरकरार है । जिसका समाधान जरूरी है ।

### राज्यों का गठन एवं पुनर्गठन

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले भारत दो भागों में बंटा हुआ था । ब्रिटिश भारत एवं देशी राज्य । स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले भारत में देशी रियासतों की संख्या लगभग 565 थी इसके अन्तर्गत भारत की जनसंख्या का 20 प्रतिशत भाग तथा भारत के क्षेत्रफल का लगभग 45 प्रतिशत आता था । सत्ता सौपने के साथ साथ ब्रिटिश शासन ने तुरन्त यह घोषणा कि भारतीय रियासतों को भी उनकी सर्वोच्च सत्ता सौंप दी जाएगी । प्रत्येक रियासत अपनी इच्छानुसार भारत या पाकिस्तान अथवा स्वयं स्वतंत्र शासन स्थापित कर सकते हैं । कठिनाई यह थी कि इन रियासतों में निर्णय लेने का अधिकार जनता के पास नहीं था । यह अधिकार सिर्फ राजाओं के पास था क्योंकि किसी भी रियासत में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था नहीं थी । शीघ्र ही कई राजाओं ने स्वतंत्र अस्तित्व कायम रखने की इच्छा व्यक्त कर दी । सबसे पहले त्रावनकोर के राजा ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी । हैदराबाद के निजाम ने भी आजाद रहने की मंशा व्यक्त कर दी । इसके बाद भोपाल के नवाब ने भी संविधान सभा में भाग लेने से इंकार कर दिया । इसप्रकार कई रियासतों में कठिनाई पैदा हुई । जिसके कारण देश की क्षेत्रीय अखंडता- एकता का प्रश्न सबसे बड़ी चुनौती बन चुका था । इस चुनौती से निपटने के लिए भारत सरकार के तत्कालीन गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने बड़ी व्यावहारिक भूमिका निभाई । जिनके कारण अधिकतर राजाओं ने 15 अगस्त, 1947 से पहले भारत में शामिल होने की घोषणा कर दी । इसी उद्देश्य से तैयार सहमति पत्र पर रियासत के शासकों ने हस्ताक्षर कर दिए । परन्तु जूनागढ़, हैदराबाद, कश्मीर तथा मणिपुर का विलय में कठिनाईयों का सामना करना पड़ा । वर्तमान में भारतीय लोकतांत्रिक राष्ट्र के लिए कश्मीर आज भी चुनौती बना हुआ है ।

### भाषा पर राजनीतिक विवाद

भाषा के आधार पर प्रान्तों के गठन का राजनीतिक मुद्दा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन (1920) में पहली बार शामिल किया गया । आजादी के बाद यह विचार व्यक्त किया गया कि भाषा के आधार पर राज्य का निर्माण एक अव्यवहारिक कदम है क्योंकि इससे देश क टूटने का खतरा पैदा हो सकता है । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के

केन्द्रीय नेतृत्व ने भाषा के आधार पर राज्यों के गठन के प्रस्ताव को खारिज कर दिया। किन्तु दक्षिण में मद्रास प्रान्त के तेलुगु भाषी क्षेत्र में भाषा को आधार मानकर राज्य निर्माण का आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। आन्दोलन के दौरान कांग्रेस के वरिष्ठ नेता पोर्टीश्रीसमलु की लगभग 55 दिनों की भूख हड़ताल के बाद मृत्यु हो गयी। तत्कालीन प्र. मं. पं. जवाहरलाल नेहरू ने 1952 में आन्ध्र प्रदेश नाम से अलग राज्य बनाने की घोषणा कर दी। इस प्रकार आन्ध्र प्रदेश भाषा के आधार पर गठित पहला राज्य बना। आज भी क्षेत्रीय भाषाओं के बढ़ते वर्चस्व के कारण परप्रान्तीय राष्ट्र के लिए चुनौती बनता जा रहा है। जिसका स्थायी समाधान करना आवश्यक होगा।

भारतीय लोकतंत्र के सामने सामाजिक असमानता ए-छुआछूत, जातिवाद, महिलाओं की स्थिति। आर्थिक असमानताएं-दरिद्रता, गरीबी का दुश्चक्र, बेरोजगारी आर्थिक असमानता का लोकतंत्रीय संस्थाओं पर प्रभाव शासन जनता का शासन नहीं रह गया है, अशांति और अराजकता, संघर्ष व तनाव के कारण प्रशासन के समक्ष कठिनाइयां व भ्रष्टाचार में वृद्धि, अशिक्षा, क्षेत्रीय असंतुलन-उत्तर पूर्वोत्तर, ग्रामीण क्षेत्रों में अभावग्रस्त स्थिति, आदिवासी और पहाड़ी क्षेत्रों के विकास की समस्या, भाषाई समस्या, सांप्रदायिकता, हिंसा और अलगावाद, आतंकवाद, सुरक्षा की तरह चुनौतियां राष्ट्र के लिए बनी हुई हैं।

### भारत में राष्ट्रवाद का निष्कर्ष विश्लेषण

भारत में राष्ट्रवाद का उदय कोई निश्चित घटना का परिणाम नहीं है बल्कि सदियों घटना का परिणाम है। भारत में राष्ट्रवाद की भावना प्राचीनकाल से ही विद्यमान रही है। प्राचीन काल में हिन्दुओं के चार धाम, पवित्र नदियों, धर्म, संस्कृति, रीति रिवाज व सांस्कृतिक परम्पराओं ने देश को राष्ट्रीयता के सूत्र में बांधा वैदिककाल में अथर्ववेद में कहा गया है “वरूण राष्ट्र को अविचल करे, बृहस्पति राष्ट्र को स्थिर करे, इन्द्र राष्ट्र को सुदृढ़ करे और अग्निदेव राष्ट्र को निश्चय से धारण करें। भारत में बौद्धिक पुनर्जागरण आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का महत्त्वपूर्ण कारण था। राष्ट्रवाद के प्रसार और प्रभाव से स्वराज्य प्राप्ति की लालसा बलवती होती गई और अंत राष्ट्रवादी विचारधारा ने स्वतंत्रता दिलायी। राष्ट्रवाद के बारे में विदेशियों द्वारा फैलाया यह भ्रमपूर्ण विचार की भारत कभी राष्ट्र नहीं था गलत साबित हुआ। भारत की अपनी सभ्यता, संस्कृति, पृथक, भौगोलिक अस्तित्व की गरिमा, भारत का एकीकरण, आध्यात्मिक एवं राष्ट्रवादी विचारधारा ने विश्व के सामने लाखों चुनौतियाँ के बावजूद एक आदर्श एवं यथार्थ राष्ट्रवाद का उदाहरण स्थापित किया। भारतीय राष्ट्रवाद मानवता और विश्व के लिए एक अद्वितीय वरदान सिद्ध यदि वह देशप्रेम का पर्यायवाची हो सकेगा। सभी को संकीर्ण या उग्र राष्ट्रवाद के विचार से बचते

हुए भारत के मूल मंत्र वसुधैव कुटुम्बकम् और विश्वशांति की अवधारणा को अपनाना होगा । तभी भारत को एक 21 वीं सदो का महान राष्ट्र का दर्जा दिलाया जा सकता है ।”

### संदर्भ सूची

1. समकालीन विश्वराजनीति - एन्. सी. ई. आर्. टी., पृ. संख्या 198-207 ।
2. राजनीतिक अवधारणाएँ और भारतीय लोकतंत्र - बी. बी. तायल, पृ. संख्या 300-320 ।
3. राजनीतिक सिद्धान्त एवं चिन्तन - बी. बी. चौधरी एवं एस्. वी. जार्ज, पृ. संख्या 318-331 ।
4. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था - बी. बी. तायल, पृ. संख्या 363-390 ।
5. भारतीय राजनीति तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य - बी. बी. चौधरी, पृ. संख्या 263-281 ।
6. आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त - बी. बी. तायल, पृ. संख्या 69-78 ।
7. राजनीतिक सिद्धान्त - एन्. सी. ई. आर्. टी., पृ. संख्या 94-100 ।
8. समाज, राज्य और भारतीय शासन - बी. बी. तायल, पृ. संख्या 141-158 ।
9. इंडिया टुडे, जनवरी - 2019, पृ. संख्या - 25-27 ।
10. इंडिया टुडे, फरवरी - 2019, पृ. संख्या - 24-30 ।
11. प्रतियोगिता दर्पण - जुलाई 2018, पृ. संख्या 91-99 ।

संविदाध्यापक ( राजनीतिविज्ञान )

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,

क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ

विद्याविहार, मुम्बई

★★★

### POTRAYAL OF METROPOLITAN AND FAMILIAL LANDSCAPE IN GIRISH KARNAD'S WEDDING ALBUM AND BOILED BEANS ON TOAST

Dr. M.K.Sheeba

#### ABSTACT:

Indian drama written in English and translated in English by Indian playwrights has registered a remarkable growth over recent decades. Contemporary Indian drama in English translation has made bold innovations and fruitful experiments in terms of both thematic concerns and technical virtuositities. It has been increasingly turning to history,

legend, myth and folklore, tapping their springs of vitality and vocal cords of popularity with splendid results. Girish Karnad has been one of the vanguards who aided the audiences by using Indian English, mythical references in theatres that is at once internalized and voiced without any traces of premeditation. He returned the gaze, as a vehicle of resistance and gave Indian drama, a form, and an identity that is truly Indian. Karnad has a great insight into human nature. His knowledge of human nature has made him a great actor and playwright. He is well aware of the paradoxes in human nature and has a thorough comprehension of life's ironies. He has been a humanistic writer. His profound humanism is carved in all his works. His various roles as actor and the protagonists in his plays illustrate the clear absurdity in human nature and life. This paper focuses on Karnad's play *Wedding Album* and *Boiled Beans on Toast*.

Drama is a composite art in which the written word of the playwright is concretized when it becomes the spoken word of the actor on the stage. Karnad's dramatic world is most strange. Peeling the multiple layers of fantasy his protagonists seek to confront the mystery of life beyond the horizon. His plays represent a unique depiction of the dual between the internal and the external, the intuitive and rationalistic tradition and modernity. They are insightful and thought provoking. He catches the bewilderment of the individual psyches, confronted with the overbearing socio cultural atmosphere and the ever-present modern promise of self-fulfillment. Karnad is India's best living playwright whose journey from *Yayati* to *Boiled Beans on Toast* holds a mirror to the very evolution of a truly 'Indian Theatre' which can be true to its traditions and at the same time responsive to contemporary concerns. Karnad tries to establish a 'dialectical relationship between tradition and modernity which is a central theme in contemporary Indian society.

His *Wedding Album* deals with an urban middle-class Saraswat Brahmin family of Nadkarni: a daughter who lives in Australia (Hema) with her professional husband, a son (Rohit) who is a software designer, a younger daughter (Vidula) willing to marry a suitable boy from America she has never met, a doting mother (Mother) and a cook (Radhabai). The family is educated, liberal and modern. The *Wedding Album* which is structured into nine scenes deals primarily with women and their two different worlds i.e. traditional and modern cyber world. But both of them merge into each other. Even the traditional elder women are fused with energy, hope and modern sensibility. Younger sorts enjoy liberty in education, love, courtship via 'distance' technology; and marriage. The play marks the highest evolution of feminine psyche. The scattered personalities

reveal the discontentment of human selves in the world of globalization. The play which is structured into nine scenes deals primarily with women and their two different worlds i.e. traditional and modern cyber world. But both of them merge into each other. Even the traditional elder women are fused with energy, hope and modern sensibility. Younger sorts enjoy liberty in education, love, courtship via 'distance' technology; and marriage. The play marks the highest evolution of feminine psyche. The mother, Hema, Vidula, Pratibha and even Radhabai are new women in the true sense of the term. Their lives are full of anxieties and resentments while facing the mental, psychological and emotional hardships of life.

Karnad's latest play, *Benda Kaalu on Toast*, focuses on the city of Bangalore or Bangaluru, and recalls the myth regarding its foundation. According to the myth, an eleventh century King was offered boiled beans by a woman when he was in need of food. To express his gratitude the King named the spot Bendakalooru, which later on came to be known as Bangalore. The Kannada term 'Benda Kaalu' means 'boiled beans' in English. This mythical story is the source behind *Boiled Beans on Toast*. According to Devina Dutt: This is a masterfully structured play that makes the city of Bangalore and its explosive growth in the last two decades its subject. . . . It avoids the prevalent clichés of its image as an IT city or a city of numerous call centers. Instead, it presents the stories of a cross section of those who live in Bangalore, and whose expectations, survival techniques and disappointments are all coloured by it.

The play holds a mirror to the fractured lives of its floating popularity which occupies a broad social spectrum from the struggler to the street-smart survivor, from the small-town aspirant to the elite. This is a city of wild hopes and hurried dreams, of disappointment and despair, of environmental destruction and rapid development. Bengaluru is said to have acquired its name through a king's gratitude for a dish of boiled beans. Bengaluru on toast- a place that has been cooked rapidly from traditional to modern, from a small town into a large metropolis is the theme of this play. It is the portrait of a city. Anjana Padabidri, the central character, weeps over the cut down of the magnificent rain tree across the road-a tree because of which she built her house there. Her friend, Dolly, a high society tattered wife with little to occupy her, feel sorry about the cement concrete that is replacing tree everywhere. However, what she regret, Prabhakar Telang finds exciting. He has never seen tall, glassfronted buildings except on television, in the small town in the Western Ghats from where he comes. For him, they spell promise. For Vimala, the family servant on the make, the obscurity that the city offers, provides convenient cover. Girish Karnad's play is lively with moments of lyricism, cruelty, and laughter, as it deals with a host of characters, push around together, opposing, and getting intertwined or preying upon each other, in the city of 'Bangalore'.

Karnad is an innovative, multifaceted and problem playwright who imbibes several personalities in one. He has contributed a lot to enrich Indian English Drama through playtext, performance, acting, and direction. As a modern playwright, Karnad is always engaged in the act of “deconstructing myths. He takes up mythical and legendary tales from his own culture and unfolds them in the light of modern sensibility. This deconstructing myth becomes an act of self-searching for the playwright...he combines the past and the present into a unity that bespeaks of tradition and modernity in his art of playwriting” (Gill 8).

### References:

1. Srinivasan, Amrit. “Foreward” Wedding Album. New Delhi: Oxford University Press, 2009.
2. Gill, L.S. Girish Karnad’s Hayavadana: A Critical Study. New Delhi: Asia Book Club, 2005.
3. Dutt, Devina. “A Really Serious Playwright.” The Hindu 19 May 2013, weekly ed.: 1.
4. Karnad, Girish: “Boiled Beans on Toast”, New Delhi, OUP, 2014.
5. Nimsarkar, P.D. Women in Girish Karnad’s Plays - A Critical Perspectives. New Delhi: Creative Books, 2009.

**Lecturer in English**  
**Rashtriya Sanskrit Sansthan (D. U.)**  
**Guruvayoor Campus**  
**Puranattukara, Thrissur, Kerala.**



## CHANGED SECURITY DISCOURSE IN THE CONTEXT OF SOUTH ASIA: A THEORETICAL PERSPECTIVE

**Dr. Suman Singh**

The end of cold war and the accompanying structural changes of monumental proportion introduced a revolutionary change in security thinking. On the one hand, it dramatically decreased the traditional security threats to the states. On the other hand, the world was confronted with a series of intra- state violent conflicts of various origins, large- scale atrocities, and even genocide. It suffices to mention that of the 103 wars since the end of the cold war, ninety- seven have been fought within rather than between states ( David Preston and Don Hubert 2000: 345). The world today straddles two ends of the security spectrum. At one end of the spectrum lies the military strength as demonstrated in Iraq. On the other end rest the needs of human societies, where military power is of limited

utility (Raghavan 2000). To illustrate, Tsunami and hurricanes like Katrina, Rita and the recent Sandy have proved that security in the ultimate analysis is a human condition which remains vulnerable to powers beyond military solutions. Further, the consequences of the attacks by international terrorist organizations in New York, Madrid, London, Dhaka, Mumbai, Hyderabad blasts and the recent Christ Church, New Zealand are new security phenomena. Through all these new emerging trends, it's quite clear that people in a State can be vulnerable to military threats even when the State is not at war, is a condition that defies the traditional meaning of security. There are economic, environmental, societal, political threats impacting on the safety and security of the citizens where the traditional powers and instruments of the State are not enough to ameliorate the situation. Moreover, such threats do not recognize boundaries or barriers of Geography. Thus, these could not be explained within the realist/neo-realist paradigm and has given way to the idea of Human Security to take its roots.

The genealogy of the idea of Human Security can be related to the growing dissatisfaction with prevailing notions of development and security in the 1960s, 1970s and 1980s ( Bajpai 2003:196). The most important forerunners of the idea of Human Security were the reports of a series of multinational independent commissions composed of prominent leaders, intellectuals and academics. The concept of Human Security was also enriched by Copenhagen School and its Securitization theory. The Copenhagen school, which is best known for advancing the theoretical aspects of the concept, put it this way, ' the exact definition and criteria of securitization is constituted by the inter subjective establishment of an existential threat with a saliency sufficient to have substantial political effects' (Barry Buzan, Ole Waever, and Jaap de Wilde 1998: 25). The main proponents were Barry Buzan, Ole Waever and their associates such as J. De Wilde, P. Lemaitre, M. Kelstrup. It underlines the umbilical links between the 'State-Security' and 'Societal- Security' which allows a multi-sectoral context to analyse the security a compact consisting of military, political, economic, societal and environmental dimension. This imperative has been echoed in the words of eminent scholars. To illustrate, According to Venkatachaliya, the former chief justice of India, "Frontiers of a State are important but so are frontiers of human dignity". To quote Buzan, "The idea of security is easier to apply to things than to people". Further, Sheehan expressed that, "the calculated activities and policies of other human beings... human agency is fundamental to the definition of the security threat... within this definition all traditional military threats can be

encapsulated". Moreover, Booth discussed the dangers of the traditional orthodoxy in terms of what security means. For him, "the price for old thinking about world security is paid, daily, in the death, disease, poverty and oppression of millions". Following the line, Thakur remarked that, "to insist on national security at the expense of human security would be to trivialize 'security in many real-world circumstances to the point of sterility, bereft of any practical meaning". He notes also the presence of "structural coercion so severe as to turn human beings into chattels...." (Acharya, 2001).

However, the articulation of a Human Security perspective is attributed to the United Nations Development Programme and Mahbub-ul-Haq. The first major contribution was the Human Development Report 1994 published by UNDP. Mahbub-ul-Haq outlined his approach in his paper, "*New Imperatives of Human Security*" (1994). He argued that the world is "entering a new era of Human Security" in which "the entire concept of security will change and change dramatically". In this new conception, security will be equated with the "security of individuals, not just security of territory". He writes, "We need to fashion a new concept of Human Security that is reflected in the lives of our people, not in the weapons of our country". Thus, whereas the traditional conception of security emphasizes territorial integrity and national independence as the primary values that need to be protected, human security pertains above all to the safety and well-being of "all the people everywhere- in their homes, in their jobs, in their streets, in their communities, in their environment" (Haq 1994:1). Further, UNDP Report urged that the concept of security must change in two ways: from an exclusive stress on territorial security to a much greater stress on people's security; and from security through armaments to security through sustainable human development (UNDP 1994:229).

It reflected light on the wide range of threats to people like Economic Security, Food Security, Health Security, Environmental Security, Community Security, and Political Security. Economic Security refers to an individual's enjoyment of a basic income, either through gainful employment or from a social safety net. Food security refers to an individual's access to food via his or her assets, employment or income. Health security refers to an individual's freedom from various diseases and debilitating illnesses, and his or her access to health care. Environmental security refers to the integrity of land, air, and water, which make human habitation possible. Personal security refers to an individual's freedom from crime and violence, especially women and children, who are more

vulnerable. Community security refers to cultural dignity and to inter-community peace within which an individual lives and grows. Finally, Political security refers to protection against human rights violations (UNDP 1994: 230-34). Thus, it focuses on two major components of human Security; Freedom from Fear and Freedom from want, however, its emphasis was more on 'Freedom from want'. This reflected the developing countries perspective. This was followed by different perspectives.

Canada came out with its own version of Human Security that places greater emphasis on 'Freedom from Fear'. The concrete issues that Canada emphasizes are: the protection of civilians in times of war (legal and physical protection of people in war zones); and the resolution of violent conflict (conflict prevention, resolution and post-conflict peace building) (Axworthy 1997:183-96). Japan has also evolved a Human Security perspective that is closer to the UNDP than the Canadian concept. The Japanese perspective on Human Security also places more emphasis on 'Freedom from want' than 'Freedom from fear' (Ministry of Foreign affairs of Japan 1998). While the security of the individual and of people is the prime concern of all analysts dealing with Human Security, they disagree on whether preferences should be given to 'Freedom from want' or 'Freedom from fear'.

Thus, Human Security relates to the protection of the individual's personal safety and freedom from direct threats of violence. The promotion of human development and good governance, and, when necessary, the collective use of sanctions and force are central to managing Human Security. States, International organizations, Non- governmental organizations, and other groups in civil society in combination are vital to the prospects of Human Security.

### **South Asian Context:**

Traditional security has failed to deliver meaningful security to a significant proportion of the people of Asia. There is a long felt need to examine and understand the relations between the security needs of the State and those of its people. So, the new concept of human security can be best illustrated in the context of South Asia where, while military spending is falling all over the world, it continues to rise in South Asia. In South Asia, the benefits of peace are immense and the cost of conflicts is even greater. The human security situation in South Asia is one of the worst in the world characterized by a high degree of both want and fear. The persistence of threats to the safety and security of the individual and the people generated by violent intra- state conflicts, non-democratic rule, violation of democratic and human rights, misgovernance, corruption, crime, terrorism,

gender violence, trafficking in women and children and the like are enormous, and remain a constant source of fear. On the other hand, human deprivation caused by the consequences of under development, poverty, hunger, deprivation, inequality, illiteracy, disease and health hazards, over population, environmental degradation, natural disaster, overuse and misuse of natural resources and so on in the region is more acute than in any world region barring drought affected Africa ( Abdus Sabur 2006: 47-48).

Therefore, the new security approach in the South Asian context should be an attempt to combine the competing perspectives of the 'narrow' and 'wide' streams of security thought with a view to obtaining a constructive and interactive security outlook involving the State and the people. The different aspects of human security in South Asia can be identified as follows:

### **Environmental Security:**

This sector has been described as the ultimate security. Certainly, for a State like the Maldives, a change in the environment, e.g. Rise in temperature, would mean the extinction of the State itself. On the other hand, soil erosion, forest cover depletion and loss of agricultural land have led to migration of populations across borders in South Asia. This has heightened security risks and brought about responses from State players on the military dimension. Moreover, the issues involved in the environmental sector are numerous, e.g. Eco system disruption, energy problems, economic issues of unsustainable modes of production and civil strife related to environmental issues.

### **Economic security:**

In South Asia, the major dilemma currently is of coping with the impact of globalization, on the one hand, and of ensuring the economic security of the poor, on the other, economic activity always triggers survival issues in other sectors. However, even economic success can lead to a security crisis in some parts of the societal sector. The security of economic resources and supply, fears of economic losers in the global markets, the security dimensions of drugs and weapons linkages, etc, form part of both economics of security and security of economics.

### **Societal security:**

Societal security is closely related to, but quite clearly distinct from, political and military security. The boundaries of the State and society are not always co-terminous in South Asia. The notion of societal identity of large self-sustaining segments of society and the smaller groups and ethnic segments have been affected by this, on both the intra- state and inter-

state thresholds. The issues of migration, social and ethnic cleansing, economic competition amongst societal groups and of societal conflicts clearly impact on the security of State and society.

### **Political security:**

Threats from political- ideological factors, security against supra-national integration, threats to international society and law and order from fundamental forces form part of this sector.

Viewing all these aspects of security it's quite clear that South Asia is deeply embroiled in the throes of conflict. And the cumulative effect of this is prone to have a bearing on the overall security and stability of South Asia.

### **References:**

1. Acharya, Amitav and Arabinda Acharya : Human Security in Asia: Conceptual Ambiguities and Common understandings available at (<http://www.robarts.yorko.ca/pdf/acharyadelhi.pdf>).
2. Acharya, Amitav (Summer 2001): "Human Security: East versus West," International Journal.
3. Axworthy, Lloyd (1997): "Canada and Human Security: The Need for Leadership." International Journal, Vol. LII, pp. 183-196.
4. Bajpai K (Aug. 2000): "Human Security: Concept and Measurement, Kroc Institute Occasional Paper No. 19: OP:1, Notre Dame University, available at [http://www.nd.edu/~krocinst/ocpapers/op\\_19\\_1.pdf](http://www.nd.edu/~krocinst/ocpapers/op_19_1.pdf).
5. Bajpai K (2003): "The Idea of Human Security," International Studies, Vol.40, No.1, pp. 195-228.
6. Buzan, Barry (1987): People's, State and Fear: The National Security Problem in International Relations, Transasia Publishers, New Delhi.
7. Buzan, Barry, Waever, Ole, Jaap and De Wilde (1998): Security: A New Framework for Analysis, Boulder Publishers, Lynne Rienner.
8. Buzan, Barry (1991): "New Patterns of Global Security in the Twenty-First Century," International Affairs, Vol.67, No.3.
9. Chari, P.R. and Sonika Gupta(eds.) (2006): Human Security in South Asia: Energy, Gender, Migration and Globalisation, Social Science Press, New Delhi.
10. Human Security Network (2001): Chairman's Summary, third ministerial meeting, Petra, 11-12 May 2001, available at [www.humansecuritynetwork.org](http://www.humansecuritynetwork.org).
11. Ministry of Foreign Affairs of Japan: For the Human Security 21<sup>st</sup> Century: Human Security, available at (<http://www.mofa.go.jp/>).

12. Preston, David and Don Hubert (2000): "Towards Freedom from Fear: An Agenda for Human Security," BIIS Journal, Vol.21, No.3.
13. Raghavan, V.R. (Summer 2000): "Changing Ideas on Security," Security and Society, Vol.2, No.2.
14. Roberts, David (Dec. 2005): "Empowering the Human Security Debate: Making it Coherent and Meaningful," International Journal on World Peace, Vol.XX11, No.4.
15. Roland, Paris (Fall 2000): "Human Security: Paradigm Shift or Hot Air?" International Security Vol.26, No.2, pp.87-102.
16. Subrahmanyam, K. (Winter 2004): "Terrorism, Society and Security," Security and Society, Vol.1, No.1, pp. 7-12.
17. Thakur, Ramesh (2000): "Security in the New Millennia," RCSS Newsletter, Regional Centre for Strategic Studies, Vol. 6, No.4.
18. Thakur, Ramesh and Newman, Edward (eds.) (2005): Broadening Asia's Security Discourse and Agenda: Political, Social and Environmental Perspectives, United Nations University Press, Tokyo.
19. United Nations Development Programme (2002): Human Security in Bangladesh: In Search of Justice and Dignity, UNDP, 2002.
20. United Nations Development Programme (1994): Human Development Report 1994, UNDP, 1994.
21. Walt, Stephen M. (June 1991): "The Renaissance of Security Studies," International Studies Quarterly, Vol.35, No.2, pp.211-239.

**Contract Teacher (Political Science)**  
**Rashtriya Sanskrit Sansthan**  
**(Deemed University)**  
**K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeetham**  
**Vidyavihar, Mumbai - 77**



## “EFFECTS OF GLOBALIZATION OVER PHYSICAL EDUCATION AND SPORTS”

✍Dr. Shankar Baburao Andhale

### **Abstract:**

The impact of globalization and educational system is a major concern some people saw it as a treat for traditional institutions such as the family and the school, another argument saw benefits in overturning traditional and developing modern attitudes. This paper will analysis the positive and negative impacts of globalization on Education, Physical Education and Sports for developing countries.

### **Introduction:**

As a social institution of sports, economic and cultural organizations in the presence of a structure growing with each passing day that the changing economic and social condition in the world for social cases, consideration of the reappraisal has become mandatory. Sports specific living changes, changes in the world economic and cultural will be locking because; nothing in nature is not independent of other existing things or social life.

The last quarter of the 20<sup>th</sup> century that marked a distinct form of globalization is affecting the basic elements of daily life significantly. The global community to the phenomenon of acceptance of capitalism alternative is suggesting thesis, post-modernism emerged on the basis of the phenol-menon of globalization in a sense, except that the fields and planted the philosophical approach the witness.

### **Definition of Globalization:**

The concept of globalization to make comprehensive literature reviews on the width of this topic even though it pays and a precise definition of the concept which hard to say. The debate on globalization and due to different definitions of the different approaches to the topic appeared. The definition of a multidimensional structure of globalization also supply description to the factor are the axis dimensions.

The recent globalization of social change and the nature of the world changing and explanation for the conversions as a concept are used. Hence, globalization and economic relations network worldwide to express both the spread of western political, cultural and social values should be accepted by other societies in the world as a preferred the emergence of causes. These values from positive consumer culture, democratic management style human rights covers a lot of area up to science.

### **How did today's phase of Globalization start?**

Human beings as long as they have lived on earth, have been moving around the world, trading, learning and interacting. But from the 17<sup>th</sup> century arose a new situation, that of colonialism. Colonialism is often referred to as the first wave of globalization and contributed to the most significant feature of the global economy today, the division between the first world of by and large, colonial nations and the third world of colonized ones.

After the Second World War, newly liberated nations like India, China and many others attempted to break free of the colonial chains that had forced their countries into underdevelopment. Policies of self-reliant development were put in place in the newly independent nations of Asia, Africa and Latin America that minimized dependence on the developed nations for import of resources and technology.

### **Phases of Globalization:**

Looking to justify the need for a comprehensive global state of conceptualization indicating that the Roland Robertson, globalization is a process that begins before capitalism and modernity. According to him, this process can be explained by the five stages.

#### **1. First Stage-Phase of Genesis:**

Took the beginning of the fifteenth century to the middle of the eighteenth century in Europe. Transnational collapse of the system is gradual emergence of communities in the nation brought forward his thoughts on the concept of the individual and humanity. The start of modern geography, this period corresponds to the spread of the Gregorian calendar.

#### **2. Second Stage-Initial Phase:**

It took until the middle of the 18<sup>th</sup> century the 1870s. Establishment of the concept of the nation state increased understanding of the human rights, international contact settlement and the adoption of non-European Nations in the international community that has been the most popular events of the universe.

#### **3. Third Stage-Ascension Phase:**

It took until mid-1920 from the 1870s. Defining events, theming the problem of modernity, national and personal identities of the themes of globalization and migration brought the settlement restrictions, the increase in the number and speed of its extreme forms of global communication, the rise of the Christian Union

movement, the development of global competitions, world time enacting and the First World War.

**4. Fourth Stage-Phase of Fight for Hegemony:**

Took the mid-1920s until the late 1960s. Defining events, the establishment of the league of Nations and then the United Nations, the adoption of the principle of national independence the conflicts in the understanding of modernity then to peak of the cold war, the use of the atomic bomb the implementation of the genocide, the emergency of the third world.

**5. Fifth stage – Uncertainly Phase:**

Began in the 1960s showed signs of crisis in the early 1990s. Defining events, space studies and pressing on the Moon, the end of the cold war, the spread of nuclear and the ---nuclear weapons, the rapid increase in global communication tools, nation-state, be confronted more and more with the problems of multi-culturalism and multi-activity, take the form of human rights is a global problem, increasing awareness of environmental problems and in this regard, the consolidation of the global media system, increase in the anti-globalization movement, the rise of Islam as an act of globalizing.

**6. Some Positive and Negative impacts of Globalization:**

Although globalization seems to be unavoidable to many countries and numerous initiatives and efforts have been made to adopt to it with aims at taking the opportunities created from it to develop their societies and people I recent years there are also increasing international concerns with the dangerous impacts of globalization on in di----- and national developments. Various social movements have been initiated against the threats of globalization particularly in developing countries. The negative impacts of globalization include various types of economic, political and cultural colonization by advanced countries on those developing and under-developed countries. Inevitably, how to maximize the opportunities and benefits from globalization to support local developments and reduce the threats and negative impacts of globalization will be the major concerns of developing countries. As mentioned above, globalization is creating opportunities for sharing knowledge, technology, social values and behavioral norms and promoting developments at different levels including individuals, organizations, communities and societies

across different countries and cultures. In particular, the advantages of globalization major include the following.

1. Global sharing of knowledge, skills and intellectual assets that are necessary to multiple developments are different levels.
2. Mutual support, supplement and benefit to produce synergy for various developments of countries, communities and individuals.
3. Creating values and enhancing efficiency through the above global sharing and mutual support to serving local needs and growth.
4. Promoting international understanding, collaboration harmony, and acceptance to cultural diversity across countries and regions.
5. Facilitating communications, interactions and encouraging multi-cultural contributions at different level among countries.

At the same time globalization potentially creating serious negative impacts for developing and undeveloped countries. This is also the major reason why there have been so many ongoing social movements issue different parts of the world against the trends of globalization particularly in economic and political areas. The potential negative impacts of globalization are various types of political, economic and cultural colonization and overwhelming influences of advanced countries to developing countries and rapidly increasing gaps between rich areas and poor areas in different parts of the world. In particular the potential negative impacts include the following-

1. Increasing the technological gaps digital divides between advanced countries and less developed countries.
2. Creating more legitimate opportunities for a few advanced countries for a new form of colonization developing countries.
3. Increasing inequalities and conflicts between areas and cultures.
4. Promoting the dominant cultures and values of some advanced areas.

### **Globalization and the University:**

As noted globalization international communication networks, integration of economies and cultures related to the connection. This is another aspect of the statement is to be noticed and at the global level within the current locale the locales global construction. The process for the university's impact on a platform of local and global interaction with the state has been imported. In this interaction with nation state for the world economy is in the middle are strongly encouraged. World economy

globalization in motive with the communications technology companies that are entitled to use that trade and investment activities to expand and they are working to improve.

Today's world of economic globalization as determined by the appropriate model can be easily estimated in US universities such as can be controlled by the company in a university type modal. This model is evolving in Max Weber's apparent watched student-customer-company trilogy.

1. In line with this new knowledge based economy universities that meet the requirements will be successful with business communities, therefore it is expected that relations will improve.
2. In this hierarchical differences between universities will be precise.
3. Universities aimed to be self-directing learning organizations.

Universities that continue to come in line with the head turning looks that it is possible to increase universities could be taken as an international elite community. Associated with each other to make a plane to discuss their research, international referee papers and articles published in the free trade rules, academic information produced in their own area a valuable academic staff get approval, accreditation processes, international scholarships academic life are increasing global process.

### References:

1. Ayyar. R.V. V. (1996). Educational policy planning and globalization. International Journal of Educational Development. 16(4), 347-354.
2. Robertson R. Kursellesme (1999). Cevumitvesal, Ankara: Bilim Yay.
3. Arslanoglu R. A. (2002). Kuresellesmeve University. Uluday Journal of Economy and Society. 21(1): 142.
4. Brown, T. (1999). Challenging globalization as discourse and phenomenon. International Journal of Lifelon Education. 18(1), 3-17.
5. ILO (2004). A fair globalization: Creating opportunities for all. Geneva, International Labour office.

**Guest Teacher (Physical Education)**  
**Rashtriya Sanskrit Sansthan (D. U.)**  
**K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeeth**  
**Vidyavihar, Mumbai – 400077**

★★★

## साहित्य समीक्षेचे स्वरूप

डॉ. मीनाक्षी बर्हाटे

प्रस्तावना :

एखाद्या साहित्य कृती वाचताना तिच्या अंतरंगाविषयी जाणकार पणे समीक्षक (सामान्य रसिक) आपला अभिप्राय अथवा प्रतिसाद देत असतो. याच अभिप्रायातून साहित्य समीक्षेचा जन्म होतो. साहित्याचा आवाका मोठा असल्यामुळे समीक्षा प्रत्येक क्षेत्रात केली जाते. यामुळे अभ्यासक अथवा समीक्षक आप आपल्या आवडीनुसार समीक्षेचा प्रांत निवडत असतो. या अभ्यास प्रक्रियेतून अभ्यासातील अनेक संधी उपलब्ध होतात. मुख्यतः त्या अभ्यासाविषयीच्या कल्पना निश्चित करता येत असून आपला अंतिम निर्णय नोंदवित येतो. यातून वाङ्मयभिरुची अधिकाधिक दृढ होऊन साहित्यसमीक्षेच्या कक्षा विस्तारल्या जातात.

वाङ्मयकृतीचा आस्वाद घेताना तिच्या आशयाविषयी मनामध्ये प्रतिक्रिया तयार करून त्याला एका साच्यामध्ये मांडण्याची जबाबदारी समीक्षकाची असते. यावरून साहित्यकृतीचा वाङ्मयीन दर्जा ठरत असतो. साहित्यकृतीचे वाचन आणि आस्वाद हे निर्णय क्षमतेसाठी प्रथम पायरी आहे. हिच प्रतिक्रिया सांगण्याला आपण वाङ्मयकृतीचे विश्लेषण, अर्थनिर्णय आणि मूल्यमापन करणे म्हणजे समीक्षा होय. त्यातून अभ्यासक त्या विषयासंबंधी आपले मूल्य निर्णय देत असतो. ह्यालाच आपण कलाकृतीला दिलेला हुंकार असे हि संबोधतो. यातून समीक्षाविचाराच्या कक्षा एक प्रकारे विकसित होतात. साहित्यकृतीचे वाचनानंतर कलावंत आस्वादाकडे वळतो. आपण घेतलेल्या कलास्वादानुसार तिचे अंतरंग शब्द बद्ध करतो. कोणत्याही वस्तूच्या आशय विषयातील बदल सांगणे हि मूलतः मानवी प्रवृत्ती आहे याच आविष्कारातून साहित्य समीक्षेचा जन्म होतो. प्रामुख्याने भाषा साहित्य अभ्यासाच्या शाखेमध्ये समीक्षा, साहित्येतिहास, संहिता अशा क्रमानुसार आपण अध्यापनाला प्राधान्य देतो. तात्पर्य, संहिता सूत्र साहित्य समीक्षेचे मार्गदर्शक तत्त्व आहे. असा निष्कर्ष अभ्यासाअंती नोंदविता येतो.

प्रारंभापासून समीक्षा लेखनाच्या प्रेरणेचा इतिहास पाहताना नियतकालिकांनी- वृत्तपत्रांनी समीक्षेच्या क्षेत्रामध्ये मोलाची कामगिरी केली आहे. नवोदित लेखक हा नियतकालिकांमधून प्रथम लेखन करत असतो. हळूहळू साहित्याबद्दलची त्याची दृष्टि दृढ होत जाते. त्यानंतर आपण अभ्यासलेल्या साहित्यकृतीकडे अतिशय चौकसपणे पाहण्याची सवय त्याला होते. यातून त्याची मांडण्याची शब्दरचना, भाषाशैली विकसित होते. नियतकालिके अभ्यासकांना एक हक्कचे व्यासपीठ उभे करून देतात. साहित्याच्या दालनामध्ये भिन्न भिन्न अभ्यास क्षेत्रांना प्रारंभ झाला. नियतकालिकातून सर्वच प्रकारचे वाङ्मय लेखन होऊ लागले.

एका अर्थाने काय तर कलावंतांच्या मनाला आलेल्या हुंकारातून समीक्षेचा आकार बनतो. हळूहळू या लेखनाचा विस्ताराने आपण विचार करायला लागतो.

### कलाकृती समजून घेण्याच्या पायऱ्या

1. आस्वाद
2. आकलन
3. मूल्यमापन

साहित्यकृतीचे वाचनानंतर कलावंत आस्वादाकडे वळतो. आपण घेतलेल्या कलास्वादानुसार तिचे अंतरंग शब्द बद्ध करतो. कोणत्याही वस्तूच्या आशय विषयाला बदल सांगणे हि मूलतः मानवी प्रवृत्ती आहे. याच आविष्कारातून साहित्य समीक्षेचा जन्म होतो. प्रामुख्याने भाषा साहित्य अभ्यासाच्या शाखेमध्ये समीक्षा - साहित्येतिहास संहिता अशा क्रमानुसार आपण अध्यापनाला प्राधान्य देता. तात्पर्य, संहिता सूत्र साहित्य समीक्षेचे मार्गदर्शक तत्त्व असते असा निष्कर्ष अभ्यासाअंती नोंदविता येतो.

साहित्याचा अभ्यास आणि साहित्याचे अध्यापन हे दोन्ही निरनिराळे क्षेत्र आहे. अभ्यासकाच्या दृष्टीपुढे त्या साहित्यकृतीचे सांगोपांग वाचन करून तिच्या मधील गुण दोषाचे विवेचन करणे होय. मात्र अध्यापकासमोर त्यातील अंतरंग (स्वरूपाचे विवेचन) उलगडून दाखविण्याची जबाबदारी असते.

प्रामुख्याने संहितेच्या स्वरूपाचा विचार केल्यास लेखक, समीक्षक, शिक्षक व विद्यार्थी असा क्रम नोंदविला जातो. मात्र संहिता निर्माण करण्याचे कार्य अध्यापक करत असतो. कारण तो सातत्याने त्या कलाकृतीचे वाचन करत असतो. याच भूमिकेतून त्यांची गणना समीक्षकामध्ये केली जाते.

साहित्याची समीक्षा हि अनेक अंगाने केली जाते.ह्या पद्धतीला समीक्षा पद्धती असे संबोधले जाते. यात रूपवादी, आस्वदक, समाजशास्त्रीय, मानसशास्त्रीय स्त्रीवादी, तौलनिक, भाषावैज्ञानिक, मार्क्सवादी इत्यादी समीक्षा पद्धतीनुसार साहित्याचा अभ्यास होतो. प्रत्येक पद्धतीच्या स्वरूप प्रेरणा ह्या वेगवेगळ्या आहेत. सर्व समीक्षा प्रकारामध्ये संज्ञा वापरल्या जातात.

रूपबंध, कथानक, रस, रिती, पात्र, मूल्य, लय, निकष, आदिबंध, अशा संज्ञांनी वाङ्मय प्रकाराची समीक्षा केली जाते. या सर्व संज्ञा साहित्यकृतीच्या अभ्यासासाठी खप मोलाचे कार्य करतात. प्रस्तुत शोधनिबंधामध्ये साहित्य समीक्षेचे स्वरूप सांगून त्यातील कालाव्यापारामुळे साहित्य समीक्षेच्या कक्षा कशाप्रकारे विस्तारित होतात. या दृष्टीकोणातून विचार या विषयाकडे लक्ष केंद्रित करण्याचा प्रयत्न केला आहे. या ठिकाणी रा.भा.पाटणकर

## संगोष्ठी सौरभ

यांच्या सौंदर्यमीमांसा आणि प्रभाकर पाध्ये यांच्या सौंदर्यनुभव सारख्या ग्रंथातून ह्या संकल्पना अभ्यासकासमोर स्पष्ट होतात. साहित्य समीक्षेचा अभ्यास करताना ह्या ग्रंथाचा आधार घेतल्याशिवाय पुढे जाता येत नाही.

कलाकृतील गूढ वाचकासमोर स्पष्ट करण्याची जबाबदारी समीक्षकावर असते. आस्वाद आणि लेखक यांना जोडणारा दुवा म्हणजे समीक्षक असतो. कारण सामान्य वाचकाची उत्कटता वाढविण्याचे कार्य रसास्वाद करत असतो. यासाठी त्या कलावंताकडे एका विशिष्ट प्रकारची दृष्टी असणे आवश्यक असते. ह्यासाठी त्या विषयाचे सखोल, वाचन, चिंतन, निरीक्षण करण अति आवश्यक असते. या अनुभवातून त्याच्या स्वानुभवाची जाण अधिक घट्ट होत असते. या सर्वासाठी समीक्षा विचार मोलाचे सहकार्य करत असतो.

साहित्याविषयक संकल्पना, शास्त्रशुद्ध रीतीने मीमांसा (टीकालेखन) वैयक्तिक स्वानुभव वर्गीकरण ह्या सर्व कंगो-याचा विचार कलाविचार करीत असतो. कला विचार साहित्यातील सौंदर्यस्थळे शोधत असतात. यातून मानवी मनातील असंख्य भाव भावना व्यक्त होतात. याचा विचार साहित्यकृतीच्या तळाशी निगडित असतो. त्याला आपण ज्ञान गर्भ व मूल्य गर्भ अभिप्राय देणे म्हणतो. या संदर्भात संस्कृत मीमांसा राजशेखर (८८०-९२०) या काळात काव्यमीमांसा या ग्रंथामध्ये प्रतिभेविषयीचे विवेचन करताना कारयित्री आणि भावयित्री असे दोन प्रतिभेचे प्रकार मांडतो. (संज्ञा संकल्पना कोश, पृ.३९७) थोडक्यात रचनेची मांडणी करून ग्रहण झालेली. दोष स्थळे दाखविण्याचे कार्य समीक्षक करत असतो.

### समारोप :

इ.स. १९६० नंतर साहित्यामध्ये नवनवीन साहित्य प्रवाह उदयाला आले. या कालखंडावर आजही मोठ्या प्रमाणात समीक्षा उपलब्ध आहे. मात्र संहितेच्या अंगाने अद्याप पाहिजे तेवढा विचार केल्या जात नाही. समीक्षा हि चारही बाजूने साहित्य कृतीचे विवेचन करण्यावर प्राधान्य देत असते.तेव्हा सहानुभूतीपूर्वक, सहद्यतने, आस्वाद घेणे समीक्षकाला आवश्यक असते. ललित साहित्यामध्ये आस्वाद, आकलन, मूल्यमापन, निर्णय क्षमता ह्या सर्व पायरी अतिशय महत्त्वाच्या मानल्या जातात.टीका म्हणजे निर्णय क्षमता असणे होय.

### संदर्भ ग्रंथ

1. गणोरकर प्रभा (संपा.); संज्ञा संकल्पना : कोश, भटकळ प्रकाशन, मुंबई, प्रथमावृत्ती 2001, पृ. 397.
2. पाटील गंगाधर; समीक्षामीमांसा, मौज प्रकाशन गृह, गिरगाव मुंबई, प्रथमावृत्ती 2001, पृ. 6.

## संगोष्ठी सौरभ

---

3. राजाध्यक्ष विजया; मराठी वाङ्मय कोश : खंड 4, महाराष्ट्र राज्य संस्कृती मंडळ, वाई, प्रथमावृत्ती.....
4. जोशी वसंत; काही वाद्ययंत्रप्रकार : शोध आणि स्वरूप; डायमंड प्रकाशन, पुणे प्रथमावृत्ती 2011, (संहिता : एका दशावताराची), पृ.52.
5. शेळके भास्कर; समीक्षा संकल्पना आणि स्वरूप, शब्दालय प्रकाशन, कोपारगाव, प्रथमावृत्ती 2009, पृ. 8.

अतिथी अध्यापिका  
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान ( मा.वि. )  
क.जे सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,  
विद्याविहार, मुंबई ७७

★★★

# आस्वादक साहित्य समीक्षा : एक चिंतन

डॉ. दैवत सावंत

मराठी साहित्य विश्वामध्ये समीक्षेला आज फार महत्त्व प्राप्त झालेले आहे. आजच्या काळात विविध प्रकारच्या साहित्यकृती निर्माण होत असून त्यावर साधक-बाधक चर्चा होताना दिसते. त्यामुळे समीक्षा म्हणजे काय? हे निटपणे समजून घेतल्याशिवाय पर्याय उरत नाही. समीक्षा म्हणजे एखाद्या कलाकृतीवर दिलेला निर्णय होय. हे ढोबळमानाने म्हणता येईल. साहित्यामध्ये समीक्षा ही कलाकृतीची अर्थात कथा, कादंबरी, नाटक, कविता, आत्मचरित्र आदी साहित्यकृतीची केली जाते. ती कलाकृती कशी लिहिली. तिच्यामध्ये असलेल्या चांगल्या गोष्टी अथवा साम्यस्थळे, दोष-मर्यादा समीक्षक नोंदवित असतो. समीक्षेसाठी समीक्षक हा व्यासंगी असला पाहिजे. त्याला निर्णय, मूल्यांकन, अर्थ निर्णयने, करता आले पाहिजे. तेव्हा ती उत्तम समीक्षा ठरते. 'एखाद्या गोष्टीवर अनुकूल किंवा प्रतिकूल अभिप्राय देणे, ही माणसाची सहजप्रवृत्ती असते. माणूस व्यवहारात हा अभिप्राय जसा सहजपणे देतो तसाच तो कलाकृती किंवा साहित्यकृती यांच्या संदर्भातही देतो.'

मराठी साहित्यात कलाकृतीची समीक्षा केली जाते. त्यातही समीक्षा ही कोणत्या प्रकारची केली जाते याला महत्त्व असते. अर्थात मराठी साहित्य क्षेत्रात अनेकविध समीक्षेचे प्रकार आहेत. त्यामध्ये तौलनिक साहित्य समीक्षा, समाजशास्त्रीय समीक्षा, स्त्रीवादी साहित्य समीक्षा, आदिबंधात्मक साहित्य समीक्षा, चरित्रात्मक साहित्य समीक्षा, मानसशास्त्रीय साहित्य समीक्षा, आस्वादक साहित्य समीक्षा आदि समीक्षा प्रकार पडताना दिसतात. त्यामुळे समीक्षा म्हणजे काय हे लक्षात घेणे गरजेचे वाटते.

### व्याख्या :

1. श्री. के. क्षीरसागरांच्या मते :- 'टीका म्हणजे वाङ्मयासंबंधीचे वाङ्मय' आपल्या 'टीकाविवेक' या ग्रंथात ते मांडतात, टीकेचा उद्देश कलाकृतीचा जाणकारपणे आस्वाद घेणे आणि आस्वादाच्या ओघातच सहजगत्या आवश्यक तेथे मूल्यमापनासही न कचरणे हा आहे.'
2. प्रा. रा. ग. जाधव : 'ललित साहित्याचे आकलन, आस्वादन व मूल्यमापन करण्यासाठी गांभीर्याने होणारा विचारव्यवहार म्हणजे समीक्षा.'

3. वा. ल. कुलकर्णी : 'वाङ्मयीन टीका हा कधी न संपणारा शोध असतो. सामान्य वाङ्मयकृतीही टीकाबुद्धीला आव्हान देत असते. कारण तिची सामान्यता ही शोधाअंतीच लक्षात येते. टीकेची भूमिका बोधकाची राहू शकत नाही. तर ती सत्याचा शोध घेणा-या शोधकाची असते.'
4. डॉ. रा. शं. वाळिंबे : 'विचार करण्याच्या शास्त्रीय पद्धतीला अनुसरून काही निश्चित तत्त्वांच्या आधारे वाङ्मयाचे विवेकपूर्ण विश्लेषण करण्याची जी शक्ती तिला टीका म्हणतात.'
5. डॉ. गो. म. कुलकर्णी : 'परिस्थिती कोणतीही असली तरी टीकाप्रवृत्ती उपजत असते. व्यक्तिपरत्वे तिचा आविष्कार कमी-अधिक प्रमाणात होतो हा भाग वेगळा. या आविष्काराला विशेष घाट आला की तिला समीक्षा संबोधले जाते.'

अर्थात उपरोक्त व्याख्यांवरून आपणाला समीक्षा म्हणजे काय? हे लक्षात येईल.

मराठी साहित्यात साहित्यकृती निर्माता अर्थात लेखक आणि समीक्षक यांची कार्ये परस्पर पुरक आहेत. साहित्यिक साहित्यकृती निर्माण करतो. त्यात वेगवेगळ्या घटनांचा कथा समुच्छ अधोरेखित करतो. त्याला मिळालेला, सूचलेलं विषय घेऊन तो साहित्यनिर्मिती करतो. त्यातील सर्वच प्रसंग, घटना समकालीन असेलच असे नाही. तो त्यांच्या कल्पनाशक्तीवर हे सर्व काही उभे करित असतो. त्याचे चांगले-वाईट मूल्यमापन करण्याचा अधिकार हा ख-या अर्थाने समीक्षकाला असतो. त्यासाठी समीक्षकाला सर्व प्रकारची जाण असली पाहिजे. व्यक्तिगत जीवनाला समीक्षेत स्थान नसते. साहित्यकृतीच्या आधारे समीक्षक त्या कृतीचे मूल्यांकन करून अभिप्राय नोंदवित असतो.

### आस्वादक साहित्य समीक्षा

आस्वादक साहित्य समीक्षेमध्ये रसग्रहणाला फार महत्त्व आहे. आस्वादक याला पर्यायीशब्द म्हणून आस्वादक टीका, परिणामदर्शी, निर्माणक असे शब्द वापरले जातात. आस्वादक साहित्य समीक्षा मनपटलावर परिणाम करणा-या आशयाला स्थान देते. त्यात मानवी वृत्ती-प्रवृत्तींची दखल घेतली जाते. सामान्यतः वाचकाला एखादो साहित्यकृती वाचताना त्यात आपला भाव प्रकट होताना दिसतो. ती गोष्टी आपल्या जीवनाशी निगडीत आहे अशी जाणीव होते. हे जीवन दुस-या कुणाचे नसून ते आपलेच आहे. त्या साहित्य समीक्षेला आस्वादक समीक्षा म्हणता येईल. साहित्यकृतीचा रसास्वाद घेणे येथे महत्त्वपूर्ण असते. आस्वादक साहित्य समीक्षेत वाचक खऱ्या अर्थाने अंतर्मुख होतो. एखाद्या घटनेशी आपला संबंध दर्शवितो. याठिकाणी रसग्रहणाला वाव असतो. घटनेशी, कथानकाशी, विषयाशी समरस होणे ही क्रिया अनेकदा घडत असते. आस्वादक साहित्य समीक्षेच्या संदर्भात आपणाला विचार करताना पुढील

मत लक्षात घ्यावे लागते ते असे की, 'काटेकोर नियमांना धरून समीक्षेचे कार्य कोरडेपणाने न करता ते सहानुभूतीने व रसिकतेने केले पाहिजे. ह्या विचारातून आस्वादक समीक्षा जन्माला आली. समीक्षा म्हणजे एक आस्वादन होय. समीक्षकाची भूमिका आस्वादकाची असली पाहिजे. प्रत्येक साहित्यकृती ही एक स्वतंत्र व अनन्यसाधारण अशी निर्मिती असते. तिची स्वतःची अशी काही वैशिष्ट्ये असतात. समीक्षकाने त्यांचे ग्रहण करून त्यांच्या आस्वाद घ्यावयाचा असतो. रसिकतेने घेतलेल्या ह्या आस्वादाचे त्यांच्या मनावर झालेले परिणामही अशा समीक्षेत तो नोंदवू शकतो'

अर्थात साहित्यकृती ही लेखकाचे सर्जन असते. लेखन करताना लेखक आपल्या अनुभवाविषयी जीवन पद्धतीची त्यात नोंद करतो. घटनात्मक प्रसंग रेखाटून वाचकाला अंतर्मुख करण्याची कला त्याकडे असते. शिवाय उत्साहवर्धक वातावरण साहित्यकृतीमध्ये आल्यानंतर वाचक त्या कलाकृतीत एकरूप होऊन त्या साहित्यकृतीचा आस्वाद घेत असतो. 1960 नंतरच्या काळात मराठी साहित्यामध्ये आस्वादक समीक्षेसंबंधी विशेष आणि महत्त्वपूर्ण चर्चा झाल्याचे आपणास दिसून येईल. आजपर्यंत आपण आस्वादक साहित्य समीक्षेच्या अंगांना विचार करणा-या समीक्षकांचा विचार केला तर त्यामध्ये आपणाला वा. ल. कुलकर्णी, गंगाधर गाडगीळ, माधव आचवल, विद्याधर पुंडलिक, विजया राजाध्यक्ष यांची नावे ठकळपणे दिसून येतील. सदर समीक्षकांनी या साहित्य समीक्षापद्धतीचा अवलंब करून साहित्यकृतीचे माणसाच्या मनावर विशेष असे परिणाम केलेले आहे.

संबंध मराठी साहित्य समीक्षेचा आढावा घेतला असता समीक्षेत व्यक्तिगत जीवनाला स्थान नसते. परंतु आस्वादक साहित्य समीक्षा अधिक व्यक्तिगत झाल्याने आत्माविष्कार हेच तिचे विशेष वैशिष्ट्य जाणवत राहते. त्यामुळे वाचकाच्या मनावर उमटलेल्या परिणामांचे वर्णन कधी या समीक्षेत एकरूप होऊन जाते हे समजण्यास मार्ग नसतो. परिणामी साहित्यकृतीमध्ये नोंदीला फार महत्त्व असतं. गंगाधर पाटील हे साहित्य समीक्षेविषयी मांडतात, 'प्रत्येक व्यक्तिप्रमाणे प्रत्येक साहित्यकृतीला स्वतःचं असं स्वतंत्र व्यक्तिमत्त्व असतं... कुठच्याही वर्गीकरणात अगर साहित्य विषयक संकल्पनाव्यूहात ती चपखल बसत नाही. एकेका साहित्यकृतीचा आस्वाद घेऊनच रसिक साहित्याशो नातं जोडीत असतो. तिचा रसिकाच्या मनावर होणारा अनेकविध संस्कार आणि त्यापासून होणारा आनंद येथूनच सगळ्या साहित्यविषयक विचाराला सुरुवात होते. आस्वादक समीक्षेत महत्त्व असतं ते पुस्तकाच्या मनावर होणाऱ्या संस्काराच्या निरीक्षणाला आणि नोंदीला. हा संस्कार मोकळ्या मनानं स्वीकारला गेला पाहिजे. एखाद्या तात्त्विक भूमिकेच्या चौकटीत स्वतःला अडकून घेऊन तिला (साहित्यकृतीला) सामोरे गेले तर तिच्यावर अन्याय होण्याची शक्यता असते. अर्थात आस्वादक

साहित्य समीक्षेत स्वतंत्र विचाराला महत्त्व प्राप्त होते. लेखकाने रेखाटलेलं जीवन अगदी मोकळ्यापणाने रसिकांनी स्वीकारावं आणि यातून आनंद घ्यावा ही भूमिका या पाठीमागे आहे. अर्थात परिणामकारक प्रसंगाला यात स्थान प्राप्त होते. उदा. विश्वास पाटील यांची 'झाडाझडती' ही कलाकृती मानवी मन हेलावून टाकते. ती विविध घटनाप्रसंगातून रसिकाला खिळवून ठेवते. ही तिची ही सामर्थ्यशाली बाब आपणास लक्षात येईल. प्रत्येक प्रसंग, घटना अनेकांच्या जीवनात वेगवेगळ्या ठिकाणी घडल्याची गोष्ट या ठिकाणी आपणाला दिसून येईल. ख-या अर्थाने रसिक मनावर परिणाम झाल्याचा दाखला या कलाकृतीचे वाचन करताना लक्षात येतो. अर्थात तिच्यात केलेल्या नोंदी अगदी स्वतंत्र आणि समाजनिष्ठ, अनुभवनिष्ठ आणि परिणामकारक अशाच आहेत. त्यामुळे या कलाकृतीचे आस्वादक समीक्षेच्या अंगाने मूल्यमापन करता येते. परिणामी कलावंत आपल्या कलेचा पुरेपूर वापर साहित्यकृतीत करीत असतो. याविषयी डॉ. रा. शं. वाळिंबे म्हणतात, 'कलाकृतीत कलावंताच्या कलेचा जो आविष्कार झाला असेल त्या आविष्काराचे स्वरूप सहृदयतेने समजावून घेण्याचा प्रयत्न करणे हे आस्वादक टीकेचे प्रधान कार्य होय.' शिवाय एका इंग्रजी टीकाकाराचे विधान क्षीरसागर यांनी उद्धृत केलेले आहे. ते असे 'The New Criticism is useful but one should remember it is a technique of tools, not a school : It offers much help but also encourages error-' आस्वादक साहित्य समीक्षा या अंगाने समजून घ्यावी लागते. कलेचा आविष्कार ध्यानात घेणे आवश्यक ठरते. मराठी साहित्य समीक्षेत कलावंत, लेखक आपल्या साहित्यकृतीची समाजाशी, जीवनाशी नाळ जोडण्याचा प्रयत्न करतो. तो प्रयत्न आस्वादक समीक्षेत महत्त्वपूर्ण ठरतो. त्यामुळे आजचे बरेचसे साहित्य लेखन आस्वादक अंगाने अधिक होते आहे, ते समाजाकरिता उपयुक्त ठरते. त्यामुळे मराठी समीक्षेच्या क्षेत्रात आस्वादक समीक्षेला इतर समीक्षेच्या तुलनेत महत्त्वपूर्ण स्थान निर्माण झालेले आहे असे आपणास म्हणता येईल.

### संदर्भ ग्रंथ :

1. पवार गो. मा. / हातकणंगलेकर म. द. (संपा) शनिवडक मराठी समीक्षा, साहित्य अकादमी पुर्नमुद्रण आवृत्ती, 2008.
2. ठाकुर रवींद्र / मोरे नंदकुमार, (संपा) शसमीक्षापद्धती सिद्धांत आणि उपयोजन, पद्मगंधा प्रकाशन, पुणे, प्र. आ. 2011.
3. जाधव मनोहर (संपा) शसमीक्षेतील नव्या संकल्पना, स्वरूप प्रकाशन, औरंगाबाद, प्र. आ. 2001.

## संगोष्ठी सौरभ

---

4. राजाध्यक्ष विजया (संपा) श्मराठी वाङ्मयकोश खंड- चौथा, महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृती मंडळ, मुंबई, प्र. आ. 2002.
5. पांढरे नीला, श्मराठी समीक्षेची वाटचाल, उन्मेष प्रकाशन, पुणे, प्र. आ. 2016.
6. पाटील गंगाधर, श्ममीक्षा मीमांसा, मौज प्रकाशनगृह, मुंबई, प्र.आ. 2011.
7. Mr. Vikaspedia.in.

पोस्ट डॉक्टरेट

मराठी भाषा व वाङ्मय विभाग,  
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विद्यापीठ,  
औरंगाबाद.

★★★

## Operators using in C++ to software Development

✍Miss Vaishali Nivdunge

C++ is a middle-level programming language developed by Bjarne Stroustrup starting in 1979 at Bell Labs. C++ runs on a variety of platforms, such as Windows, Mac OS, and the various versions of UNIX. This tutorial adopts a simple and practical approach to describe the concepts of C++.

C++ is regarded as a **middle-level** language, as it comprises a combination of both high-level and low-level language features.

C++ was developed by Bjarne Stroustrup starting in 1979 at Bell Labs in Murray Hill, New Jersey, as an enhancement to the C language and originally named C with Classes but later it was renamed C++ in 1983.

In this topic I will discuss about Operators in C++, this concept is very useful in object oriented language.

An operator is a symbol that tells the compiler to perform specific mathematical or logical manipulations. C++ have many operators because of its rich in built-in operators

- 1) Arithmetic Operators
- 2) Relational Operators
- 3) Logical Operators
- 4) Bitwise Operators
- 5) Assignment Operators
- 6) Misc Operators

Then first one is arithmetic Operators

### 1. Arithmetic Operators:

In arithmetic operators addition, subtraction, multiplication, division, modulo division and Increment Decrement Operators also:

**Addition(+)** :- adds two operands , e.g. A+B will give 30

**Subtraction(-)** :-Subtract second operand from the first e.g. A-B will give -10

**Multiplication(\*)** :- multiplies both operands e.g. A\*B will give 200

**Division (/)** :- divides numerator by denominator e.g. B/A will give 2

**Modulo Division(%)** :- Modulus Operator and remainder of after an integer division e.g. B%A will give 0

**Increment Operator(++)** :- increases integer value by one , a++ will give 11

**Decrement Operator(--)** :- decreases integer value by one e.g. A-- will give 9

### 2. Relational Operators

- There are following relational operators supported by C++ language
- Assume variable X holds 10 and variable Y holds 20, then –
- Show Examples

Operator	Description	Example
==	Checks if the values of two operands are equal or not, if yes then condition becomes true.	(X== Y) is not true.
!=	Checks if the values of two operands are equal or not, if values are not equal then condition becomes true.	(X != Y) is true.
>	Checks if the value of left operand is greater than the value of right operand, if yes then condition becomes true.	(X>Y) is not true.
<	Checks if the value of left operand is less than the value of right operand, if yes then condition becomes true.	(X<Y) is true.
>=	Checks if the value of left operand is greater than or equal to the value of right operand, if yes then condition becomes true.	(X>= Y) is not true.
<=	Checks if the value of left operand is less than or equal to the value of right operand, if yes then condition becomes true.	(X<= Y) is true.

### 3. Logical Operators

There are following logical operators supported by C++ language. Assume variable A holds 1 and variable B holds 0, then –

**Logical AND (&&):**-Called Logical AND operator. If both the operands are non-zero, then condition becomes true. **e.g.** (A && B) is false.

**Logical OR(|):**- Called Logical OR Operator. If any of the two operands is non-zero, then condition becomes true. **e.g.** (A || B) is true.

**Logical NOT (!):**-Called Logical NOT Operator. Use to reverses the logical state of its operand. If a condition is true, then Logical NOT operator will make false. **e.g.** !(A && B) is true.

#### 4. Bitwise Operators:-

Bitwise operator works on bits and perform bit-by-bit operation. The truth tables for &, |, and ^ are as follows –

p	q	p & q	p   q	p ^ q
0	0	0	0	0
0	1	0	1	1
1	1	1	1	0
1	0	0	1	1

Assume if A = 60; and B = 13; now in binary format they will be as follows –

A = 0011 1100

B = 0000 1101

-----

A&B = 0000 1100

A|B = 0011 1101

A^B = 0011 0001

~A = 1100 0011

The Bitwise operators supported by C++ language are listed in the following table. Assume variable A holds 60 and variable B holds 13, then

–

- ii. **Binary AND (&)** :-Binary AND Operator copies a bit to the result if it exists in both operands. e.g. (A & B) will give 12 which is 0000 1100
- iii. **Binary OR (|)** :-Binary OR Operator copies a bit if it exists in either operand.. e.g. (A | B) will give 61 which is 0011 1101
- iv. **Binary XOR (^)** :-Binary XOR Operator copies the bit if it is set in one operand but not both. e.g. (A ^ B) will give 49 which is 0011 0001
- v. **Binary Ones Complement (~)** :-Binary Ones Complement Operator is unary and has the effect of 'flipping' bits.e.g.(~A ) will

give -61 which is 1100 0011 in 2's complement form due to a signed binary number.

- vi. **Binary Left Shift Operator(<<):-**Binary Left Shift Operator. The left operands value is moved left by the number of bits specified by the right operand.e.g.  $A \ll 2$  will give 240 which is 1111 0000
- vii. **Binary Right Shift Operator(>>):-**Binary Right Shift Operator. The left operands value is moved right by the number of bits specified by the right operand.e.g.  $A \gg 2$  will give 15 which is 0000 1111

### 5. Assignment Operators:-

Assignment operators are used to assign value to a variable. The left side operand of the assignment operator is a variable and right side operand of the assignment operator is a value. The value on the right side must be of the same data-type of variable on the left side otherwise the compiler will raise an error. There are following assignment operators supported by C++ language –

Operator	Description	Example
=	Simple assignment operator, Assigns values from right side operands to left side operand.	$C = A + B$ will assign value of $A + B$ into C
+=	Add AND assignment operator, It adds right operand to the left operand and assign the result to left operand.	$C += A$ is equivalent to $C = C + A$
-=	Subtract AND assignment operator, It subtracts right operand from the left operand and assign the result to left operand.	$C -= A$ is equivalent to $C = C - A$
*=	Multiply AND assignment operator, It multiplies right operand with the left operand and assign the result to left operand.	$C *= A$ is equivalent to $C = C * A$

## संगोष्ठी सौरभ

/=	Divide AND assignment operator, It divides left operand with the right operand and assign the result to left operand.	$C /= A$ is equivalent to $C = C / A$
%=	Modulus AND assignment operator, It takes modulus using two operands and assign the result to left operand.	$C \% = A$ is equivalent to $C = C \% A$
<<=	Left shift AND assignment operator.	$C <<= 2$ is same as $C = C << 2$
>>=	Right shift AND assignment operator.	$C >>= 2$ is same as $C = C >> 2$
&=	Bitwise AND assignment operator.	$C \&= 2$ is same as $C = C \& 2$
^=	Bitwise exclusive OR and assignment operator.	$C \wedge= 2$ is same as $C = C \wedge 2$
=	Bitwise inclusive OR and assignment operator.	$C  = 2$ is same as $C = C   2$

And the last operator is MiscOperator in c++:

### 6. Misc Operators:-

The following table lists some other operators that C++ supports.

Sr.No	Operator & Description
1	<b>sizeof</b> <b>sizeof operator</b> returns the size of a variable. For example, <code>sizeof(a)</code> , where 'a' is integer, and will return 4.

2	<b>Condition ? X : Y</b> <b>Conditional operator (?)</b> . If Condition is true then it returns value of X otherwise returns value of Y.
3	<b>,</b> <b>Comma operator</b> causes a sequence of operations to be performed. The value of the entire comma expression is the value of the last expression of the comma-separated list.
4	<b>. (dot) and -&gt; (arrow)</b> <b>Member operators</b> are used to reference individual members of classes, structures, and unions.
5	<b>Cast</b> <b>Casting operators</b> convert one data type to another. For example, <code>int(2.2000)</code> would return 2.
6	<b>&amp;</b> <b>Pointer operator &amp;</b> returns the address of a variable. For example <code>&amp;a;</code> will give actual address of the variable.
7	<b>*</b> <b>Pointer operator *</b> is pointer to a variable. For example <code>*var;</code> will pointer to a variable var.

All these operators are very useful in Object Oriented Programming .

### References:

1. [www.tutorialspoint.com](http://www.tutorialspoint.com)
2. [www.google.com](http://www.google.com)

Guest Teacher (Computer Science)  
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D. U.)  
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeeth  
Vidyavihar, Mumbai – 400077

★★★

## GLOBALIZATION AND PHYSICAL EDUCATION

✍ Mr. Vijay Tandalekar

## GLOBALIZATION



### WHAT IS GLOBALIZATION?

- Refers to the increased flow of trade, people, investment, technology, culture, ideas among countries and creates a more integrated and interdependent world
- Globalization has been around since the 15<sup>th</sup> century when European exploration & colonization created global empires & markets, but most historians and economists agree that today is special by the extent of interdependence and the speed by which it has occurred.

### GLOBALIZATION

- Globalization is economic, political, personal and transportation communication and it is helped by political changes.
- The movement has led to practices like:  
outsourcing : Businesses move service centers and service manufacturing to countries where the labor is cheap.  
Multinational / International presence.  
Spread out.
- Unstoppable development: There are many opportunities for everyone  
Interconnections between business, political and cultural systems
- Globalization helps enhance goals of national sovereignty and democratic politics.
- The challenges of globalization are economics, messages, relationships and systems of understanding

### DRIVERS OF GLOBALIZATION

- Two factors underlie globalization

- “Decline in barriers to the free flow of goods, services, and capital” that has occurred since the end of World War II
- Technological change

### **DECLINING TRADE AND INVESTMENT BARRIERS**

- During the 1920s and ‘30s, many nations erected formidable barriers to international trade and foreign direct investment
- Advanced industrial nations of the West committed themselves after World War II to removing barriers to the free flow of goods, services, and capital between nations.

### **GLOBALIZATION OF SPORTS AND PHYSICAL EDUCATION**

- Sports played its vital part to unified Nations, bring integrity and harmony leads to a positive image of any particular Nation at global level. E.g. Nelsen Mandela used south African Rugby team to unite their Nation, Mandela’s mission is to provide “One Team, One Country and Won Victory”

### **SPORTS AS COMPLEX MIXTURE OF CULTURAL, POLITICS AND COMMERCIAL INTREST**

- Various factors that prompted the development and spread of organized sports:
- Industrialization.
- The concentration of people towards urban areas provides a pool of potential participants.
- Development of global rationalization with standardized folk games according to some rules and regulations.
- Formation of National and International associations, provide legitimacy and identity to the sport.
- Mass production of goods and technology.
- The sport celebrity as a figure of Admiration.

### **ATHLETICISM AND SPORTING GAMES ARE UNIVERSALLY DIMENSION OF CULTURE**

- Sports evolve from different types of entertainment activities, exercises, fencing, archery, jousting tournaments, cultural nobility, various forms of folk games etc.
- Sports as part of globalization:
- Global audience share common experiences through global broadcasting.
- There are hundreds of International sporting association that contributes billions of dollars.
- Sports are become important expression of National identity.

### **SPORTS AND PARTICULAR IDENTITY**

- Sports is the platform through which, nations and individuals present themselves, the character of their nation's Identity with the courtesy of their achievements.
- Physical Education is doing build-up work at grassroots level in all nations.

### REVIVAL OF TRADITIONAL SPORTS

- Rationalize local sports; when broadcasters show these sports world wide. E.g. Kabbadi, Judo, Marshal Arts etc.
- Sports also provide us the way to compete our political, cultural and economic rivals.
- Khelo India initiative taken by central govt. in India.

### ASPECTS OF GLOBALIZATION

- Economic
- Cultural
- Political

These aspects are all interconnected!

### ECONOMIC GLOBALIZATION

Economies Are Increasingly Linked Together, EX: NAFTA (MX, CA, US), The EU, WTO (World Trade Organization)

Creation of Global Institutions:

- ♦ World Trade Organization (WTO)--responsible for policing the world trading system and ensuring that nations adhere to the rules established in WTO treaties
- ♦ In 2008, 151 nations accounting for 97% of world trade were members of the WTO
- ♦ International Monetary Fund (IMF)--maintains order in the international monetary system, provides loans

### CULTURAL GLOBALIZATION

Consumerism – People want more than they need

Cultural lines have become blurred as world becomes more connected - (cultural imperialism)

“Americanization” or “McDonaldization” threatens local cultures

- Hollywood movies
- Disneyland
- Starbucks
- Dominance of the English language

### POLITICAL GLOBALIZATION

GLOBAL INSTITUTIONS

United Nations (UN)—global association of countries that work to facilitate international peace and security, friendly relations among

nations, cooperation in solving international problems and respect for human rights.

World Bank—fights poverty by promoting economic development among developing countries

Whose interests do the UN & World Bank represent?

**Sports Coordinator  
Department of Physical Education  
University of Mumbai  
Mumbai**



## शारीरिक स्वास्थ्य और योग

✍ विजय पाटील

### शारीरिक शिक्षा का अर्थ

शारीरिक शिक्षा का शाब्दिक अर्थ तो 'शरीर की शिक्षा है' परन्तु इसका भाव शरीर तक सीमित नहीं है। वास्तव में शारीरिक शिक्षा के द्वारा बालक का शारीरिक, प्राणिक, मानसिक नैतिक एवं आत्मिक विकास होता है, उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व सुगठित होता है। शारीरिक शिक्षा केवल शारीरिक क्रिया नहीं है। शारीरिक शिक्षा, शिक्षा ही है। यह वह शिक्षा है जो शारीरिक क्रियाओं द्वारा बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व, शरीर, मन एवं आत्मा का पूर्ण विकास हेतु दी जाती है।

शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति में शारीरिक शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। खेल के मैदान में, धरती माता की धूल में ही बालक के व्यक्तित्व का वास्तविक गठन होता है। खेलों के द्वारा स्फूर्ति, बल, निर्णय शक्ति, संतुलन, साहस, सतर्कता, आगे बढ़ने की वृत्ति, मिलकर काम करने की आदत, हार जीत में समत्व-भाव, अनुशासनबद्धता आदि शारीरिक, नैतिक, सामाजिक एवं आत्मिक गुणों का विकास होता है। शारीरिक क्रियाकलापों से व्यक्ति खुलकर बाहर आता है। भीतर की कुछ कुंठाएँ, घुटन, निराशा आदि खेल की मस्ती में घुल जाती है। उत्साह उमड़ता है। क्रियाशीलता बढ़ती है, और उसे योग्य दिशा मिलती है। आनंद की प्राप्ति होती है और आनंद में ही मानव के विकास की प्रेरणा निहित है।

### शारीरिक शिक्षा के अंग

भारतीय मनोविज्ञान में मानव की भौतिक काय को स्थूल शरीर कहा गया है। इस स्थूल शरीर के दो भाग हैं। स्थूल देह को अन्नमय कोश एवं दुसरे भाग को प्राणमय कोश कहा गया है। अतः शारीरिक शिक्षाके अन्तर्गत अन्नमय कोश और प्राणमय कोश दोनों का विकास सम्मिलित है। सामान्य भाषा में अन्नमय कोश के विकास को शारीरिक विकास एवं प्राणमय कोश के विकास को संवेगात्मक विकास कहा जाता है।

### शारीरिक विकास

शारीरिक विकास के तीन प्रधान उद्देश्य होते हैं -

1. शरीर को हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर, सुडौल बनाना एवं उसकी क्षमताओं का विकास करना।
2. शरीर के सभी अंगों एवं संस्थानों की क्रियाओं का सर्वांगपूर्ण, प्रणालीबद्ध और सामंजस्यपूर्ण विकास करना।
3. शरीर का पूर्ण निरोगी रहना। यदि शरीर में कोई दोष और विकृति हो तो उसे सुधारना। विशेष रूप से आँख, नाक, कान, आदि इन्द्रियों को निरोग एवं क्षमतावान बनाना।

भारतवर्ष में शारीरिक शिक्षा का अर्थ क्षेत्र में भारतीय व्यायामपद्धति का प्रमुख स्थान है। यह विश्व की सबसे पुरानी व्यायाम प्रणाली है। जिस समय यूनान, स्पार्टा और रोम में शारीरिक शिक्षा के झिलमिलाते हुए तारे का अभ्युदय हो रहा था, उस समय भी भारतवर्ष में वैज्ञानिक आधारपर शारीरिक शिक्षा का ढाँचा बन चुका था और उस ढाँचे का प्रयोग भी हो रहा था। आश्रमों तथा गुरुकुलों के छात्रगण तथा आखाडों और व्यायामशालाओं में गृहस्थजीवन के प्राणी उपयुक्त व्यायाम का अभ्यास करते थे। इन व्यायामों में दंड-बैठक, मुगदर, गदा, नाल, धनुर्विद्या, मुष्टी, वज्रमुष्टी, आसन, प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम, सूर्यनमस्कार, नवली, नेती, धौती, वस्ती, इत्यादी प्रक्रियाएँ प्रमुख थी।

भारतीय व्यायाम पद्धति में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस पद्धति के द्वारा ध्यान को एकाग्र करना, चित्तवृत्ति का निरोध करना तथा स्मरण शक्ति आदि की वृद्धि करना सुगमतया संभव है। इसी विशेषता से आकर्षित होकर अन्य देशों में इन व्यायामों का बड़ी तीव्र गति से प्रचार और प्रसार हो रहा है। यहीं नहीं, कहीं कहीं पर तो इन व्यायामों के विभिन्न अनुसंधान केन्द्र स्थापित कर दिए गए हैं।

मनोविज्ञान के युग का प्रारंभ होते ही शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम तथा संगठन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश हुआ। फलतः बच्चों की अभिरूचि, प्रवृत्ति, उम्र तथा क्षमता को ध्यान में रखकर शारीरिक शिक्षा के पाठों का निर्माण हुआ।

शैशव काल में ड्रिल को हटाकर छोटे छोटे यांत्रिक खेल तथा कसरतों पर अधिक बल दिया गया। इसके बाद जिमनास्टिक्स की ओर युवकों को आकर्षित किया गया। सारी कसरतें संगीत की लयपर युवकों में अधिक सुखद और रूचिकर बनाने के प्रयास हुए। शारीरिक शिक्षा का क्षेत्र बहुत विस्तृत बना दिया गया। आज यह विषय अंतराष्ट्रीय आदान प्रदान का एक सुलभ साधन हो गया है। शारीरिक शिक्षा सामाजिक सुधार के लिए अत्यंत उपयोगी समझी जाती है। इसके द्वारा पारस्परिक सहयोग तथा ऊँच नीच का भेदनिवारण संभव माना जाता है। संवेगनियंत्रण के सक्रिय पाठ पढ़ने का अवसर भी प्राप्त होता है। इसी कारणवश बच्चों की शिक्षा को शारीरिक शिक्षा के आधार पर ही निर्धारित करना उचित समझा जाता है। शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में युवतियों का प्रमुख स्थान होता जाता है।

सभी प्रगतिशील देशों में इस शिक्षा के कार्यक्रमों की अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं तथा समारोहों की संख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है। इस विषय में प्रशिक्षण देने के लिए शारीरिक शिक्षा महाविद्यालय खुले हैं जहाँ पर अध्यापक तथा अध्यापिकाएँ प्रावधान के अनुसार तीन वर्ष दो वर्ष या एक वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। शारीरिक परिपक्वता

परीक्षा वर्तमानकालीन शारीरिक शिक्षा का प्रमुख विषय है और इसके लिए उम्र के अनुसार विभिन्न स्तर बनाए गए हैं।

विभिन्न स्तरों पर शारीरिक शिक्षा के संवर्धन के लिए संघ तथा संस्थाएँ स्थापित की गई हैं। ये संस्थाएँ समय समय पर प्रादेशिक, राष्ट्रीय तथा अंतराष्ट्रीय प्रतियोगिताएँ भी आयोजित करती हैं। इन प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए प्रतियोगियों को विशिष्ट प्रशिक्षण दिया जाता है। यही कारण है कि विश्व की प्रतियोगिताओं में दिनोंदिन प्रगति होती जाती है। आज खेलकूद भी शारीरिक शिक्षा का एक अंग हो चला है। इसके अंदर सभी खेल सम्मिलित हो जाते हैं। जिनके द्वारा स्फूर्ति तथा मनोरंजन प्राप्त होता है। शारीरिक शिक्षा आज सामान्य शिक्षा का प्रमुख अंग समझा जाने लगा है।

किसी भी समाज में शारीरिक शिक्षा का महत्त्व उसकी युद्धोन्मुख प्रवृत्तियों, धार्मिक विचारधाराओं, आर्थिक परिस्थिति तथा आदर्श पर निर्भर होती है। प्राचीन काल में शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य मांसपेशियों को विकसित करके शारीरिक शक्ति बढ़ाने तक ही सीमित था और इस सब का तात्पर्य यह था कि मनुष्य आखेट में, भारवाहन में, पेड़ों पर चढ़ने में, लकड़ी काटने में, नदी, तालाब या समुद्र में गोता लगाने में सफल हो सकें। किंतु ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती गई शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य में भी परिवर्तन होता गया और शारीरिक शिक्षा का अर्थ शरीर के अवयवों के विकास के लिए सुसंठित कार्यक्रम के रूप में होने लगा है। वर्तमान काल में शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम के अंतर्गत व्यायाम, खेलकूद, मनोरंजन आदि विषय आते हैं। साथ साथ वैयक्तिक स्वास्थ्य तथा जनस्वास्थ्य का भी इसमें स्थान है। कार्यक्रमों को निर्धारित करने के लिए शरीररचना तथा शरीर-क्रिया-विज्ञान, मनोविज्ञान तथा समाज विज्ञान के सिद्धान्तों से अधिकतम लाभ उठाया जाता है। वैयक्तिक रूप में शारीरिक शिक्षा उद्देश्य शक्ति का विकास और नाडी स्नायु संबंधी कौशल की वृद्धि कराना है तथा सामूहिक रूप में सामूहिकता की भावना को जाग्रत करना है।

इस शिक्षा का उद्देश्य एक छात्र को स्वस्थ शरीर, मन और आचरण का प्रशिक्षण देना है। स्वस्थ शरीर में एक स्वस्थ मन रखने के लिए, एक छात्र को नियमित शारीरिक व्यायाम की आवश्यकता होती है। स्कूल की पढ़ाई के बाद छात्रों के मस्तिष्क थके हुए हो जाते हैं। उनका मन कोई भी काम करने से इनकार करता है इसलिए मनोदशा और मन की ताजगी के लिए उन्हें शारीरिक और मानसिक कार्यों के कुद संगठित रूपों की आवश्यकता होती है।

**योग व शारीरिक उद्देश्य**

## संगोष्ठी सौरभ

योग शब्द संस्कृत धातु 'युज' से निकला है, जिसका मतलब है व्यक्तिगत चेतना या आत्मा का सार्वभौमिक चेतना या रूह से मिलन। योग, भारतीय ज्ञान की पांच हजार वर्ष पुरानी शैली है। हालांकि कई लोग योग को केवल शारीरिक व्यायाम ही मानते हैं, जहाँ लोग शरीर को मोड़ते, मरोड़ते, खिंचते हैं और श्वास लेने के जटिल तरीके अपनाते हैं। यह वास्तव में केवल मनुष्य के मन और आत्मा की अनंत क्षमता का खुलासा करने वाले इस गहन विज्ञान के सबसे सतही पहलू हैं। योग विज्ञान में जीवन शैली का पूर्ण सार आत्मसात किया गया है। श्री श्री रवि शंकर कहते हैं, 'योग सिर्फ व्यायाम और आसन नहीं है। यह भावनात्मक एकीकरण और रहस्यवादी तत्व का स्पर्श लिए हुए एक आध्यात्मिक ऊंचाई है, जो आपको सभी कल्पनाओं से परे की कुछ एक झलक देता है।

व्यवहारिक तौर पर आसन से पहले यम- नियम आते हैं। जिसमें शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्राणिधान 'नियम' और अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, अपरिग्रह 'यम' एक व्यवहारिक उद्देश्य ही है।

शारीरिक परिप्रेक्ष्य में योग का तात्पर्य शारीरिक अभ्यास द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य से है। अर्थात् योग के ऐसे माध्यमों का उपयोग करना जो हमें सीधे शारीरिक लाभ से जोड़ती है शारीरिक स्वास्थ्य को मजबूत बनाती है, मुख्य तौर पर शारीरिक अभ्यासों में आसनों के अभ्यास पर जोर दिया जाता है परंतु साथ ही प्राणायाम, ध्यान व प्रत्याहार का अभ्यास भी हमारे शारीरिक स्वास्थ्य पर अत्यंत प्रभावकारी है।

सामान्यतः सम्पूर्ण सूक्ष्म व्यायाम के साथ-साथ कुछ आसनों का अभ्यास शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने में बहुत लाभदायक होता है। इतना ही नहीं इसका प्रभाव मन पर भी पड़ता है।

महर्षि पतंजलि ने परिभाषा दी है - स्थिरं सुखम् आसनम्। 'स्थिर तथा सुखपूर्वक बैठने की क्रिया'

आसनों की श्रृंखला में बहुत से आसन हैं उनमें से यदि बात करें तो आचार्य पंडित श्रीराम शर्मा जी द्वारा दिया गया प्रज्ञा योग 16 आसनों का एक समूह है जो कि अभ्यास के परिप्रेक्ष्य से सरल व सहज है।' इन आसनों के अभ्यास के साथ-साथ प्रज्ञा योग के अंतिम में ॐ के उच्चारण द्वारा समस्त ब्रम्हाण्डीय ऊर्जाओं को अपने अन्तर्निहित होने का अनुभव करते हैं।

आसन अभ्यास में आत्मसंयम और नियमितता का होना भी जरूरी है।

निष्कर्षतः योग के शारीरिक अभ्यास का उद्देश्य यह है कि हम अपने शरीर को भगवान् का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।

### आसन

शरीर की विशेष अवस्था को संस्कृत में आसन नाम दिया गया है। सामान्य भाषा में कहा जाए तो आसन 'तनाव-रहित और अधिक समय तक सुविधा की विशेष शारीरिक अवस्था का द्योतक है। ईसा से दूसरी शताब्दी पूर्व पातंजलि ने योगसूत्र ग्रंथ में योगाभ्यास के सिद्धान्त निर्धारित किए थे। उन्होंने ध्यानावस्था को ही आसन कहा था और शारीरिक स्थितियों को 'योग व्यायाम' को संज्ञा दी थी। तथापि सामान्य तौर पर सक्रिय योगाभ्यासों को भी आसन ही कहा जाने लगा।

अनेक आसनों के नाम पशुओं की सहज गतिविधि और स्थितियों से व्युत्पन्न हैं और उन्हीं के नाम पर रखे गए हैं जैसे मार्जारी, मृग, सिंह, खरगोश, आदि। ये सभी आसन प्रकृति रूप से ही लाभ-प्रद अवस्थाओं को प्राप्त करने में उनकी सहायता करते हैं। आसनों का शरीर और मन पर दूरगामी प्रभाव होता है। उदाहरण के लिये, मार्जारी आसन से शरीर को फैलाना और रीढ़ को लचीला रखना, भुजंगासन से आक्रामक वृत्ति और भावुकता को दूर करना और शशांकासन 'खरगोश' की अवस्था से विश्राम प्राप्त हो जाता है। सिर के बल किया जाने वाला शीर्षासन और पद्मासन 'कमल-आसन' सर्वोत्तम आसन माने जाते हैं।

आसन मांसपेशियों, जोड़ों, हृदय-तंत्र प्रणाली, नाडियों और लसिका-संबंधी प्रणाली के साथ-साथ मन, मस्तिष्क और चक्रों 'ऊर्जा-कन्द्रों' के लिए भी लाभदायक हैं। ये मनरू कार्मिक व्यायाम हैं जो सम्पूर्ण नाडी-प्रणाली को सशक्त करने और संतुलित करने के साथ-साथ आसन-कर्ताओं के मन-मस्तिष्क को भी शांत और स्थिर रखते हैं। इन योगासनों का प्रभाव संतोषी-वृत्ति, मन की स्पष्टता, तनावमुक्ति और आन्तरिक स्वतंत्रता और शांति में परिलक्षित होता है। दैनिक जीवन में योग प्रणाली इस प्रकार से निर्धारित की गई है जिसमें साधारण प्रारंभिक अभ्यासों से अधिक विशिष्ट और कठिन आसनों तक पहुँचा जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप शरीर को क्रमिक विकास संभव हो पाता है।

योगकला में हमने आपको योग के कई प्रकारों तथा उनके लाभों से अवगत करवाया है। योग आपको स्वस्थ जीवन जीने के लिए रामबाण औषधि के समान कार्य करता है। इसके मुख्य उद्देश्य की बात करे तो यह आपके मन और मस्तिष्क को स्थिर रखता है।

योग हमें बिमारियों से बचाने में मदद करता है, जिसके चलते हम स्वस्थ जीवनशैली जीते हैं। योग के केवल शारीरिक फायदे ही नहीं हैं यह हमें तनाव रहित जीवन जीना भी सिखाता है। योग हमारे तन, मन तथा आत्मा के लिए लाभदायक है। जब योग

इतना ही लाभदायक है तो हमें इसे करने की शिक्षा अपने बच्चों को भी देना चाहिए। योग का महत्व उन्हें सिखाना चाहिए।

### **छात्रों के लिए आवश्यक है योग**

बहुत से चिकित्सक आपको योग करने की सलाह देते हैं, लेकिन आप उनकी बातों पर गौर नहीं करते हम आपको बता दें कि योग केवल साधू संतों के लिए नहीं है, यह पूरी मानव जाति के लिए आवश्यक है। खास तौर पर छात्र जीवन के लिए तो योग बहुत ही आवश्यक है।

### **योग से छात्रों में बढ़ती है एकाग्रता -**

आजकल के छात्रों में पढ़ाई को लेकर रूचि थोड़ी कम देखी जा रही है वे पढ़ाई में ध्यान नहीं लगा पाते हैं। इसके पीछे की एक वजह यह भी हो सकती है कि उनका शरीर स्वस्थ नहीं है और हम आपको बता दें कि स्वस्थ शरीर में ही शिक्षा का निवास है।

योग की मदद से स्वस्थ शरीर संभव है क्योंकि इससे सारे शरीर के रोगों का निदान होता है। और योग केवल शरीर को ही बलशाली नहीं बनाता है। बल्कि यह मन मस्तिष्क को उसके कार्य के प्रति जागरूक भी करता है।

### **योग मन को शक्तिशाली बनाता है-**

आजकल के बच्चों को बचपन से ही पढ़ाई का बहुत बोझ होता है, बचपन से ही वे प्रतियोगिता की फील्ड में उतर जाते हैं। और नाकाम होने पर उन्हें दुःख होता है। ऐसे में बच्चे कमजोर होते हैं, इसलिए बच्चों का मन स्ट्रोंग होना जरूरी है। योग मन को दुःख एवं दर्द सहन करने की शक्ति प्रदान करता है यह दृढ़ता एवं एकाग्रता शक्ति बढ़ाता है। इतना ही नहीं इससे शरीर सक्रिय एवं रचनात्मक बनता है।

### **मस्तिष्क को शक्तिशाली बनाता है-**

योग का अभ्यास नियमित तौर पर करने से आपका मस्तिष्क शक्तिशाली एवं संतुलन बनता है। इससे आपका मन विचलित नहीं होता है। यह सुप्त शक्तियों को जागृत तो करता ही है, साथ ही साथ उसमें आत्मविश्वास भी भरता है। मादक द्रव्यों से छुटकारा दिलाता है - बहुत से छात्रों को अपने जीवन निर्माण के समय मादक द्रव्यों की आदत लग जाती है यह मादक द्रव्य स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक होते हैं। योग के लगातार किये गए अभ्यास से इन गलत आदतों से छुटकारा मिल सकता है। जीवन को सुखमय बनाएं -

बहुत से छात्र बहुत ही निर्जीव जीवन व्यतीत करते हैं, ऐसे छात्रों को भी योग का सहारा जरूर लेना चाहिए। योग का अभ्यास मस्तिष्क को शुद्ध करके विचार शक्ति को बढ़ा देता है।

अब आप समझ सकते हैं कि शिक्षा जगत में योग की शिक्षा क्यों इतनी आवश्यक है। क्योंकि आज के समय में अधिकतर छात्र एवं छात्राएं ना केवल शारीरिक बल्कि मानसिक रूप से भी अस्वस्थ रहते हैं। जिसके चलते उनमें शिक्षा का विकास जितना होना चाहिए, उतना नहीं हो पा रहा है। इन सभी कारणों से वे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पा रहे हैं। यदि आप जीवन में लक्ष्य की प्राप्ति करना चाहते हैं तो योग को जरूर शामिल करें, यह आगे बढ़ने में आपकी मदद करता है।

सारांश में कहे तो शारीरिक शिक्षा प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के समय में पढ़ाया जानेवाला पाठ्यक्रम है। इस शिक्षा से तात्पर्य उन प्रक्रियाओं से है जो मनुष्य के शारीरिक विकास तथा कार्यों के समुचित संपादन में सहायक होती है। वर्तमान काल में शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत व्यायाम, खेलकूद, मनोरंजन आदि विषय आते हैं। साथ-साथ वैयक्तिक स्वास्थ्य तथा जनस्वास्थ्य का भी इसमें स्थान है। कार्यक्रमों को निर्धारित करने के लिए शरीर रचना तथा शरीर क्रिया विज्ञान, मनोविज्ञान तथा समाज विज्ञान के सिद्धांतों में अधिकतम लाभ उठाया जाता है। शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य शक्ति का विकास और नाडी, स्नायु संबंधी कौशल की वृद्धि करना है। शारीरिक गुणों को विकसित करना है और स्वास्थ्य को मजबूत करके स्वस्थ पीढ़ी का गठन करना है। शारीरिक शिक्षा में योग का महत्वपूर्ण स्थान है।

### सन्दर्भ

1. Kirkwood G, Rampes H, Tuffrey V, Richardson J, Pilkington K. Yoga for anxiety: a systematic review of the research evidence. British Journal of Sports Medicine. 2005;39(12):884-891. [PMC free article] [PubMed]
2. Yang K. A review of yoga programs for four leading risk factors of chronic diseases. Evidence-Based Complementary and Alternative Medicine. 2007;4 (4):487-491. [PMC free article] [PubMed]
3. Khalsa SBS. Yoga as a therapeutic intervention: a bibliometric analysis of published research studies. Indian Journal of Physiology and Pharmacology. 2004;48(3):269-285. [PubMed]
4. शक्ति पतंजलि योग सूत्र।
5. योगं शरणम् : डॉ प्रकाश सोनी।
6. योग : श्री श्रीरवि शंकर

## संगोष्ठी सौरभ

---

शारीरिक शिक्षक  
श्री एस्. के. सोमैया विनय मंदिर,  
विद्याविहार

★ ★ ★

# शारीरिक शिक्षा एवं योग वैश्वीकरण के संदर्भ में

डॉ. रविकुमार (शास्त्री)

### शारीरिक शिक्षा:-

किसी भी कार्य को करने के लिए शिक्षा एवं ज्ञान, विज्ञान, आत्मज्ञान की प्राप्ति एवं ज्ञान, कर्मउपासना अथवा धर्म संपादन के लिए शरीर सबसे पहली आवश्यकता है, एवं ही मुख्य आधार है। शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम् (कुमारसम्भवम् ५/३३)

अतः शरीर का स्वस्थ रहना अत्यंत आवश्यक है, रोगी अथवा अस्वस्थ शरीर के द्वारा कोई भी कार्य करना संभव नहीं है। महर्षि चाणक्य कहते हैं कि -

**सर्वमेव परित्यज्य शरीरम् अनुपालयेत् ।**

**शरीरस्य प्रणष्टस्य सर्वमेव विनष्टयति ।** (चाणक्य निति)

अर्थात् - सब का परित्याग कर, सब कुछ छोड़ कर सर्वप्रथम शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा करें क्योंकि शारीरिक स्वास्थ्य के नष्ट होने पर सब कुछ विनष्ट हो जाता है।

अब प्रश्न यह है कि - **स्वस्थ कौन है ?**

### स्वास्थ्य:-

स्वास्थ्य एवं स्वस्थ व्यक्ति की पहचान व परिभाषा बताते हुए महर्षि सुश्रुत कहते हैं -

**समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः ।**

**प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥** (सुश्रुत सं.सू.15/10)

अर्थात्- जिसके (वात-पित्त-कफ) तीनों दोष सम हो, जिसकी जठराग्नि (पाचन क्रिया) सम हो जिसकी धातुओं (रस-रक्त-मांस-भेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र/वीर्य) की क्रिया सम हो (क्षय-वृद्धि से रहित) जिसकी मलों (स्वेद-मूत्र-पुरीश) की क्रिया सम हो, जिसकी आत्मा, दसों इंद्रियां (पांच ज्ञानेन्द्रियां-पांच कर्मेन्द्रियां) और मन प्रसन्न (निर्मल अविकारी) हो ऐसे व्यक्ति को स्वस्थ कहते हैं।

### योग- :

योग विद्या भारत के ऋषि मुनियों की अमूल्य धरोहर है। सभी श्रुति स्मृतियाँ योग की महिमा का वर्णन कर रही हैं। समाधि से कर्मक्षेत्र तक योग का व्यापक वर्णन हमारे शास्त्रों में विद्यमान है। योग सभी संप्रदायों और मत-मतांतरों में निर्विवाद सार्वभौम स्वीकार्य धर्म है।

## संगोष्ठी सौरभ

संस्कृत व्याकरण शास्त्र के अनुसार महर्षि पाणिनि योग शब्द की निष्पत्ति/वर्णन युज् धातु से “युज्-समाधौ”, “युजिर-योगे”, “युज्-संयमने” अर्थ में करते हैं। अर्थात् हम कह सकते हैं कि - संयमपूर्वक साधना करते हुए स्वचेतना को परमचेतना में लय कर देना या आत्मा का परमात्मा से मिलन ही योग है।

योग के उपदेष्टा महर्षि पतंजलि योग के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं-

**योगश्चित्तवृत्ति निरोधः (योगदर्शन 1/2)**

अर्थात् - चित्त की वृत्तियों को रोकना ही योग है बहिर्मुखी वृत्तियों को सांसारिक विषयों से हटाकर अंतर्मुखी करके अपने कारण चित्त में लीन कर देना ही योग है। जितनी वृत्तियां बहिर्मुखी होती जाएंगी, उतनी ही उनमें रज और तम की मात्र बढ़ती जाएगी और उसके विपरीत जितनी वृत्तियां अंतर्मुखी होंगी, उतना ही रज और तम के तिरोभावपूर्वक सत्व का प्रकाज बढ़ता जाएगा।

**योग के अंग-:**

महर्षि पतंजलि ने योग की व्याख्या करते हुए योग के आठ अंग बताए हैं।

**यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान समाध्यः अष्टो अङ्गानि ॥**

(योगदर्शन 2/29)

अर्थात्: यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि यह योग के आठ अंग हैं।

इस अखिल विश्व में जो भी व्यक्ति अस्तित्व की खोज में लगा है उसे अष्टांग योग का परिपालन अवश्य ही करना चाहिए।

**यहां योग के प्रथम अंग यम का ही विवेचन वांछनीय है।**

**यम-:**

यम शब्द यमु-उपरमे धातु से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है -

**“यम्यन्ते उपरम्यन्ते निवर्त्यन्ते हिंसादिभ्यः इन्द्रियाणि यैस्तेयमाः”**

अर्थात् - जिनके अनुष्ठान से इंद्रियों एवं मन को हिंसादि अशुभ भावों से हटाकर आत्मकेंद्रित किया जाए वे यम हैं।

महर्षि पतंजलि ने इन यमों की परिगणना इस प्रकार की है

**“अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः”**

(योगदर्शन 2/3)

**अहिंसा-:**

अहिंसा का अर्थ है - गहन प्रेम अर्थात् जहां पर प्रेम की धारा निरंतर अर्थात् निर्बाध गति से बह रही हो, किसी भी प्राणी को मन वचन तथा कर्म से कष्ट ना देना ही अहिंसा है ।

महर्षि व्यास कहते हैं -

**“तत्रहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः”**

(योगदर्शन व्यासाभाष्य 2/3)

अर्थात् - सदा और सभी जगहों पर किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट ना देना अहिंसा कहलाता है ।

महर्षि पतंजलि अहिंसा पालन का फल बताते हुए कहते हैं -

**“अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः”** (योगदर्शन 2/35)

अर्थात् - जो मनुष्य अहिंसा को सिद्ध कर लेता है उस के संपर्क में आने वाले सभी प्राणी अपना वैरभाव त्याग देते हैं ।

**सत्य :-**

किसी भी विषय को जैसा सुना तथा अनुभव किया हो, वैसा ही उसको मन में धारण करना, वाणी से बोलना और वैसा ही आचरण करना सत्य कहलाता है । सत्य की परिभाषा करते हुए महाराज मनु कहते हैं-

**सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।**

**प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एषः धर्मः सनातनः॥**

(मनुस्मृति 4/138)

अर्थात् - सत्य बोले, किंतु वह कटु ना हो, उसे प्रिय शब्दों में ही बोलें । किंतु साथ ही यह भी ध्यान रखें कि प्रिय लगने के लिए असत्य भाषण ना करें, यही हमारा प्राचीन धर्म है ।

सत्य की महिमा का वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं-

**“सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्”**

(योगदर्शन 2/36)

अर्थात् - सत्यनिष्ठ व्यक्ति के मुख से निकले हुए सभी वचन फलीभूत होते हैं।

**अस्तेय -:**

अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना । दूसरे की वस्तु को प्राप्त करने की मन में इच्छा रखना भी चोरी है, महर्षि व्यास अस्तेय का लक्षण बताते हैं

**स्तेयमषास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणम् तत्प्रतिषेधाः पुनरस्पृहारूप-  
मस्तेयमिति । ( योगदर्शन व्यासभाष्य 2/3 )**

अर्थात् - शास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध किसी अन्य के पदार्थ को ग्रहण करना जो स्तेय रूप है, अर्थात् चोरी है । उसको पूर्ण रूप से त्याग देना मन में उसकी इच्छा भी न रखना अस्तेय है । महर्षि पतंजलि अस्तेय का फल बताते हुए कहते हैं -

**अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।**

( योगदर्शन 2/37 )

अस्तेय में पूर्ण प्रतिष्ठठा हो जाने पर संसार के सभी ऐश्वर्य उसे स्वयं ही उपलब्ध हो जाते हैं ।

**ब्रह्मचर्य -:**

ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म के समान आचरण करना, ब्रह्मा के अधिकतम समीप रहना । पूर्ण जितेंद्रिय को ही हम वास्तविक ब्रह्मचारी कह सकते हैं । भाष्यकार व्यास ब्रह्मचर्य का लक्षण बताते हुए कहते हैं-

**ब्रह्मचर्यगुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः।**

( योगदर्शन व्यास भाष्य 2/3 )

अर्थात् - गुप्तेन्द्रिय का संयम करना ही ब्रह्मचर्य है । शुक्र रक्षण करना ही इसका प्रमुख कर्म है । वासना की दृष्टि से किसी का दर्शन, स्पर्श, विपरीत लिंग के साथ एकांत सेवन, भाषण, काम चर्चा, रतिक्रीडा, काम विषय का चिंतन । इन अष्ट प्रकार के मैथुन का परित्याग करना ही ब्रह्मचर्य को सिद्ध करता है ।

ब्रह्मचर्य के पालन से शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार का बल बढ़ता है । महर्षि पतंजलि भी ब्रह्मचर्य का फल बताते हुए कहते हैं -

**ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः**

( योगदर्शन 2/38 )

वीर्य का अर्थ यहां शक्ति बल एवं उत्साह से लिया गया है । ब्रह्मचर्य सुक्त में ब्रह्मचर्य के महत्व को दर्शाते हुए अंगिरा ऋषि ने कहा है-

**आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।**

**प्रजापतिर्विराजतिविराडिनद्रोभवेद्वषी ॥**

( अथर्ववेद 11/5/16 )

## संगोष्ठी सौरभ

अर्थात् - एक सफल आचार्य ब्रह्मचारी ही हो सकता है । समस्त प्रजा की रक्षा करने वाला प्रजापति भी ब्रह्मचारी होता है । वही ब्रह्मचारी प्रजापति संसार में चमकता हुआ शक्तिशाली एवं परम ऐश्वर्यवान् इंद्र के समान सब को वश में रखने वाला होता है ।

उपनिषद् में भी कहा है - **नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः**

बलहीन शरीर से आत्मलाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता और संसार के भोग भी कमजोर शरीर से नहीं भोगे जा सकते, उसी प्रकार आत्मज्ञान की प्राप्ति भी दुर्बल शरीर वाला व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकता । इसलिए आत्मिक शक्ति को जागृत करना आवश्यक है और वह साधना के द्वारा ही संभव है ।

**अपरिग्रहः-**

परिग्रह का अर्थ है आवश्यकता से अधिक साधनों का संग्रह करना, इसके विपरीत जीवन जीने के लिए न्यूनतम साधनों को प्राप्त कर संतुष्ट रहना तथा ईश्वर आराधना व साधना को लक्ष्य बनाना अपरिग्रह है । भाष्यकार व्यास जी ने इसका लक्षण बताते हुए कहा है -

**विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसङ्गहिंसादोषदर्शनावद स्वीकरणमपरिग्रहः।**

(योगदर्शन व्यास 2/3)

अर्थात् - ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों के विषय रूप भागों में, उनके भोगने में या संग्रह करने में, उनकी रक्षा करने में, उन को स्थिर रखने में तथा उनकी क्षमता में होने वाले मानसिक कष्टों एवं दुखों को देख कर उन पर चिंतन करते हुए, इन्हें मन-वचन और कर्म से स्वीकार न करना अपरिग्रह कहलाता है । कहने का भाव यह है कि अधिक संग्रह में दोषों का चिंतन करते हुए, उनके संग्रह की भावना न रखना अपरिग्रह है । अपरिग्रह हमें सांसारिक बंधनों से तो मुक्ति दिलाता ही है साथ-साथ आध्यात्मिक जगत में भी इससे बहुत अधिक उन्नति होती है ।

महर्षि पतंजलि कहते हैं - **अपरिग्रहस्थेयं जन्मकथन्ता सम्बोधाः** (योगदर्शन 2/39)

अर्थात् - अपरिग्रह सिद्ध योगी को यह परिज्ञान हो जाता है कि मैं कौन हूँ ?, मेरा स्वरूप क्या है ? मैंने पूर्व में कहां कहां जन्म लिए हैं और किस किस अवस्था में मैं रहा हूँ ।

महर्षि पतंजलि यमों के विषय में कहते हैं -

**जातिदेशकाल समयानवच्छिन्नाः सार्वभौम महाव्रतम् ।** (योगदर्शन 2/31)

अर्थात् - जब अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूपी यमों का पालन जाति, देश काल तथा समय की सीमाओं में बंधा हुआ नहीं होता, चित्त की सभी

## संगोष्ठी सौरभ

---

अवस्थाओं में इनका पालन किया जाता है, तो ये सार्वभौम महाव्रत कहलाते हैं । जो साधक को जन्म मरण के चक्र से मुक्त कर मोक्षगामी बनाते हैं ।

तो आइए हम सब मिलकर महर्षि पतंजलि के बताए योगदर्शन एवं योगमार्ग का अनुसरण करते हुए शारीरिक शिक्षा, एवं ज्ञान, विज्ञान, आत्मज्ञान की प्राप्ति एवं ज्ञान, कर्म उपासना के माध्यम से अपने जीवन को सफल बनायें ।

विभागाध्यक्ष, योगविभाग  
श्री जे.जे.टी. विश्वविद्यालय,  
झुन्झुनू ( राज. )

★★★

# विज्ञापन में हिन्दी भाषा का महत्त्व

✍ सुश्री विदुषी बोल्ला

### विज्ञापन क्या हैं ?

इस शोध विषय को समझने के लिए प्रथमतया विषय में आगत शब्दों का ज्ञान आवश्यक है । अतः प्रश्न उठता है कि विज्ञापन क्या है ? 'विज्ञापन' शब्द से तात्पर्य है-किसी तथ्य अथवा बात की विशेष जानकारी अथवा सूचना देना । लैटिन भाषा के शब्द 'Advertere' शब्द से, जिसका शाब्दिक अर्थ है - मस्तिष्क का केन्द्रीभूत होना; 'विज्ञापन' के अंग्रेजी पर्याय 'Advertisement' बना है । विज्ञापन प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित अथवा प्रचारित होने वाला एक संदेश होता है । अन्य शब्दों में, विज्ञापन का अर्थ 'विशेष प्रकार का ज्ञापन' करना होता है, विज्ञापित होने वाला संदेश यदि विशिष्टता लिए हुए हो, तो उसका प्रभाव भी उसी प्रकार का ही होता है ।

### विज्ञापन का महत्त्व

व्यवसाय के उत्तरोत्तर विकास, वस्तु की मांग को बाजार में बनाए रखने, नई वस्तु का परिचय जन-मानस तक प्रसारित करने, विक्रय में वृद्धि करने तथा अपने प्रतिष्ठान की प्रतिष्ठा यथावत् रखने इत्यादि कुछ प्रमुख उद्देश्यों को लेकर विज्ञापन किए जाते हैं । विज्ञापन का महत्त्व मात्र यहीं तक सीमित नहीं है, अपितु यह संचार शक्ति के सशक्त माध्यमों द्वारा क्रांति ला सकने की सम्भावनाएं एवं सामर्थ्य रखते हैं । सरकार की विकासोन्मुखी योजनाओं का प्रभावकारी क्रियान्वयन, जैसे - साक्षरता, परिवार नियोजन, पोलियो एवं कुष्ठ रोग निवारण हेतु महिला सशक्तीकरण, बेरोजगारी उन्मूलन हेतु, कृषि एवं विज्ञान सम्बन्धी, आदि; विज्ञापन के माध्यम से ही त्वरित एवं फलगामी होता है । विज्ञापन आज के उपभोक्तावादी चरण में इतना अधिक महत्त्व रखता है कि बड़ी से छोटी प्रत्येक स्तर की व्यावसायिक संस्थाएं अपने बजट का एक बड़ा हिस्सा सदैव विज्ञापन के लिए व्यय करती हैं । विज्ञापन लाभ पर आधारित एक अपरिहार्य अनिवार्यता बन चुका है । साधारण व्यक्ति हेतु भी विज्ञापन उसकी दिनचर्या का एक आवश्यक एवं परामर्शकारी अंग बन चुका है । तेल, साबुन, टूथपेस्ट से लेकर जीवन साथी के चयन की उपलब्धता भी विज्ञापन द्वारा सहज रूप से की जा रही है । विज्ञापन किसी संस्थान की छवि-निर्माण में सहायक होता है । उसके उत्पाद के विषय में जनसमर्थन जुटाने में भी योगदान करता है । विज्ञापन वही सफल माना जाता

है, जो ग्राहक के मन में आकर्षण तथा वस्तु को खरीदने की अदम्य आकांक्षा तथा भावना जगा देता है।

### विज्ञापन के क्षेत्र एवं आधार

व्यावसायिक हितों से लेकर सामाजिक-जनसेवा एवं देशहित तक विज्ञापन का क्षेत्र अति व्यापक एवं अति विस्तृत है। दूसरी ओर विज्ञापन संचार माध्यमों की आय का मुख्य स्रोत होता है। आधुनिक मीडिया का सम्पूर्ण साम्राज्य ही वस्तुतः विज्ञापन पर ही निर्भर है। वीडियो, टेलिविजन, समाचार-पत्र, पत्रिकाएं, फिल्में, धारावाहिक आदि आधारभूत एवं उपयोगी माध्यम कहे जाते हैं। सूचना संप्रेषण के ये स्रोत वस्तुतः विज्ञापन आधारित अर्थव्यवस्था पर निर्भर रहते हैं। विज्ञापन निश्चित रूप से एक कला है। लक्षित उद्देश्य की प्राप्ति इसका एकमात्र उद्देश्य होता है।

### विज्ञापन में हिन्दी

हिन्दी का व्यापक प्रयोग, जनसंचार-माध्यमों की आज अनिवार्य आवश्यकता बन गई है। हिन्दी के बिना हिन्दुस्तान में जन-जन तक पहुंचना संभव नहीं है। शब्द भण्डार, व्याकरण और साहित्य सभी दृष्टियों से अत्यन्त समृद्ध, प्राचीन भाषा हिन्दी का आज के इस अर्थप्रधान युग में महत्वपूर्ण स्थान है।

आधुनिक जनसंचार के प्रमुख माध्यम आकाशवाणी, दूरदर्शन, फिल्में, समाचार-पत्र, पत्रिकाएं एवं इंटरनेट हैं। इन माध्यमों में विज्ञापन का विशेष स्थान है, हिन्दी में विज्ञापनों ने इन माध्यमों को नई जीवन्तता प्रदान की है।

हिन्दी में हर वर्ष सैकड़ों फिल्मों मुम्बई, चौन्नई एवं कोलकाता में बनती हैं एवं टेलीविजन हेतु सैकड़ों हिन्दी धारावाहिकों का निरंतर निर्माण किया जा रहा है। उपग्रह चैनलों एवं इंटरनेट पर भी हिन्दी का निरंतर व्यापक प्रयोग हो रहा है। अंग्रेजी के कई चैनल भी अब हिन्दी का प्रयोग बड़े पैमाने पर करके सम्पन्न हो रहे हैं।

विज्ञापन जनसंपर्क की सर्वोत्तम विधा है। जनसंचार के माध्यम के रूप में हिन्दी का प्रयोग कोई नई बात नहीं है, परन्तु स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी भाषा का प्रयोग राजभाषा तथा प्रयोजनमूलक हिन्दी के रूप में निरन्तर विकासमान है। जनसामान्य को उपयोगी सूचनाएं एवं सन्देश देने के लिए सदियों से सरकार एवं व्यापारी वर्ग इसी भाषा का प्रयोग करते आ रहे हैं। आमजन तक सन्देश हिन्दी में प्रसारित किए जाते हैं।

आजकल हिन्दी विज्ञापन-जगत् पर छाई हुई है। हिन्दी, मीडिया के बल पर धीरे-धीरे समृद्ध होकर विश्वभाषा बनने जा रही है। टेलीविजन कम्पनियों में मनोरंजनप्रधान और सूचनाप्रधान कार्यक्रम दिखाने की होड़ मची हुई है तथा सभी व्यावसायिक कम्पनियों

अपने उत्पादों का विज्ञापन हिन्दी में देने को आतुर हैं। विश्व के सुप्रसिद्ध रेडियो स्टेशन एवं विश्व के अन्य रेडियो स्टेशनों एफएम पर हिन्दी में विज्ञापनों का निरन्तर प्रसारण किया जाता रहा है।

हिन्दी में विज्ञापन रचनात्मक एवं शैली प्रधान होते हैं, विज्ञापन की भाषा सुगम, सरल एवं पठनीय होती है, वाक्य छोटे एवं बोलचाल की भाषा में आमतौर पर प्रचलित होते हैं। भाषा के पद तुकान्त, चुस्त, संक्षिप्त होते हैं। शब्दों के उच्चारण द्वारा नाटकीयता उभारी जाती है, इसके द्वारा थोड़े से शब्दों में श्रोता, पाठक तक अपना सन्देश पहुँचाया जाता है। विज्ञापनों में हिन्दी का प्रयोग, हिन्दी समाचार-पत्रों की स्थापना के समय से होने लगा था, अतः अब इनकी भाषा में स्थिरीकरण, शुद्धता एवं निखार आता गया है। विज्ञापनों की हिन्दी में प्रायः लोकप्रिय उपमाओं, अलंकारों, मुहावरों, कहावतों, तुकबन्दियों का पर्याप्त प्रयोग कर आकर्षक बनाया जाता है। हिन्दी में प्रायः मौलिक लेखन के बजाय अंग्रेजी-विज्ञापन के अनुवाद का कार्य अधिक होता था, इसलिए कई बार अटपटे विज्ञापन भी देखने को मिलते हैं, परन्तु अब आर्थिक दबाव के कारण हिन्दी को ज्यादा-से-ज्यादा महत्व मिल रहा है।

हिन्दी में अंग्रेजी का मिश्रण कर घोला जा रहा है। भाषा के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है। हिन्दी भाषा को जहाँ तोड़ा-मरोड़ा जा रहा है, वहीं उसे संवारा भी जा रहा है। अब ये विज्ञापन हिन्दी का पश्चिमी जगत् से परिचय करा रहे हैं। विज्ञापन की भाषा आकर्षक, प्रभावोत्पादक एवं जीवन्त होती है, इसलिए इससे उपभोक्ता आकृष्ट होता है। इसमें स्मरणयोग्य वाक्यांश, पद-बन्ध, सूत्र-निबद्ध वाक्य के कारण हिन्दी का व्यापक प्रचार-प्रसार व विकास किया जा रहा है, इससे हिन्दी की सम्प्रेषणीयता बढ़ती जा रही है, यह विश्वभाषा बनने जा रही है।

### भारत में हिन्दी पत्रकारिता

विज्ञापनों में प्रथम स्थान पत्रकारिता को जाता है। अतः विज्ञापन शब्द पत्र (NEWSPAPER) के लिए अधिक प्रचलित है। हिन्दी पत्रकारिता का जन्म सन १८८३ में लन्दन में 'हिन्दोस्थान' नामक त्रैमासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। किसी भी विदेश से प्रकाशित होनेवाले सर्वप्रथम हिन्दी पत्र के रूप में इसकी मान्यता है। इसके संस्थापक राजा रामपाल सिंह थे। यह त्रिभाषी रूप में प्रकाशित होता था और इसमें हिन्दी के साथ ही उर्दू तथा अंग्रेजी के अंश भी रहते थे। दो वर्ष तक वहाँ से प्रकाशित होते रहने के पश्चात १८८५ में यह राजा रामपाल सिंह द्वारा ही कालाकांकर (अवध) से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ। पंडित मदन मोहन मालवीय इसके प्रधान सम्पादक थे। यहाँ से यह साप्ताहिक रूप में प्रकाशित होता था। १८८७ में यह दैनिक के रूप में प्रकाशित होने लगा। अमृतलाल

## संगोष्ठी सौरभ

चक्रवर्ती, शशि भूषण चटर्जी, प्रताप नारायण मिश्र, बाल मुकुन्द गुप्त, गोपाल राम गहमरी, लाल बहादुर, गुलाबचन्द चौबे, शीतल प्रसाद उपाध्याय, राम प्रसाद सिंह तथा शिवनारायण सिंह इसके सम्पादक रहे थे । हिन्दी पत्रकारिता के विकास में इसका ऐतिहासिक महत्व है । भारत में कुल 82,237 पत्र पञ्जीकृत हैं, जिसमें 4,853 पत्रसन् 2010-11 में पञ्जीकृत कराये गए हैं । इन में से अध्येताओं की दृष्टि से प्रमुख 10 पत्रों में 5 हिन्दी, 2 मलयालम, एवं अंग्रेजी, मराठी, तमिल की एक एक पत्र शामिल हैं ।

क्र.	पत्र का नाम	अध्येताओं की संख्या
1	दैनिक जागरण	16,631,000
2	हिन्दुस्तान (लोकल)	14,746,000
3	दैनिक भास्कर	13,830,000
4	मलयालम मनोरमा	8,803,000
5	डैली थान्ती	8,283,000
6	राजस्थान पत्रिका	7,905,000
7	अमर उजाला	7,808,000
8	The Times of India	7,590,000
9	मातृभूमि	6,020,000
10	लोकमत	5,887,000

### विश्व में हिन्दी

दुनिया के डेढ सौ से अधिक देशों में दो करोड़ से अधिक भारतीयों का बोलबाला है । अधिकांश प्रवासी भारतीय आर्थिक रूप से समृद्ध हैं । 1999 में मशीन ट्रांसलेशन शिखर बैठक में में टोकियो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने जो भाषाई आंकड़े प्रस्तुत किए थे, उनके अनुसार विश्व में चीनी भाषा बोलने वालों का स्थान प्रथम और हिन्दी का द्वितीय तथा अंग्रेजी का तृतीय है ।

विदेशों में चालीस से अधिक देशों के 600 से अधिक विश्वविद्यालयों और स्कूलों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है । भारत से बाहर जिन देशों में हिन्दी का बोलने, लिखने-पढ़ने तथा अध्ययन और अध्यापक की दृष्टि से प्रयोग होता है, उन्हें हम इन वर्गों में बांट सकते हैं - 1. जहां भारतीय मूल के लोग अधिक संख्या में रहते हैं, जैसे - पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बंगलादेश, म्यांमार, श्रीलंका और मालदीव आदि । 2. भारतीय संस्कृति से प्रभावित

## संगोष्ठी सौरभ

दक्षिण पूर्वी एशियाई देश, जैसे - इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, चीन, मंगोलिया, कोरिया तथा जापान आदि। 3. जहां हिन्दी को विश्व की आधुनिक भाषा के रूप में पढाया जाता है अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा और यूरोप क देश । 4. अरब और अन्य इस्लामी देश, जैसे - संयुक्त अरब अमरीरात (दुबई) अफगानिस्तान, कतर, मिस्र, उजबेकिस्तान, कजाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान आदि ।

### विदेशों में हिन्दी पत्रकारिता का उद्भव

ऐतिहासिक दृष्टि से विदेशों में हिन्दी पत्रकारिता का जन्म सन १८८३ में लंदन से 'हिन्दोस्थान' नामक त्रैमासिक पत्र से हुआ । किसी भी विदेश से प्रकाशित होनेवाले सर्वप्रथम हिन्दी पत्र के रूप में इसकी मान्यता है । इसके संस्थापक राजा रामपाल सिंह थे । यह त्रिभाषी रूप में प्रकाशित होता था और इसमें हिन्दी के साथ ही उर्दू तथा अंग्रेजी के अंश भी रहते थे । कालांतर में इंग्लैण्ड की राजधानी लंदन से ही कतिपय अन्य हिन्दी पत्र भी प्रकाशित हुए । इसमें शांता सोनी द्वारा सम्पादित 'नवीन' शीर्षक पत्र भी उल्लेखित किया जा सकता है । यह साप्ताहिक रूप में प्रकाशित होता था । इसी प्रकार एस.एन. गौरीसरिया के सम्पादकत्व में 'सन्मार्ग' शीर्षक से भी एक पत्र लंदन से प्रकाशित हुआ था । पी.जे. पेंडर्स ने भी एक पत्र यहीं से प्रकाशित किया था, इसका शीर्षक 'केसरी' था । इसी प्रकार सुकुमार मजूमदार के सम्पादकत्व में 'प्रवासी' शीर्षक से प्रकाशित एक पत्र भी उल्लेखनीय है। लंदन से जो पत्र-पत्रिकाएं हिन्दी में प्रकाशित हुई, उनमें जगदीश कौशल द्वारा सम्पादित 'अमरदीप' का नाम भी उल्लेखनीय है । यह एक साप्ताहिक पत्र था । इसी प्रकार लंदन में भारत से प्रकाशित 'आज' के प्रतिनिधि धर्मेन्द्र गौतम ने भी 'प्रवासिनी' शीर्षक से एक पत्र का सम्पादन आरम्भ किया था जो त्रैमासिक प्रकाशित होता था ।

### विदेशी हिन्दी पत्र - पत्रिकाओं की तालिका

क्र.	पत्र नाम	देश / शहर
1	सोवियत संघ	मास्को
2	सर्वोदय, ज्वालामुखी	जापान
3	यूनेस्को कूरियर	पेरिस

## संगोष्ठी सौरभ

4	हिन्दुस्तानी, जनता, आर्योदय, कांग्रेस, हिन्दू धर्म, दर्पण, इण्डियन टाइम्स, अनुराग, महाशिवरात्रि एवं आभा इत्यादि	मारिशस
5	कोहिनूर अखबारसाप्ताहिक 'प्रकाश' और 'शांतिदूत' तथा मासिक 'ज्योति'	सूरीनाम
6	अमृतसिंधु नामक, धर्मवीर, हिन्दी, आर्य संदेश, आर्यमित्र, इण्डियन ओपिनयन	दक्षिण अफ्रीका
7	प्राची प्रकाश जागृति, ब्रह्म भूमि	बर्मा
8	बिहार बन्धु, धर्म नीति तत्व, विद्या धर्म दिपिका, द्वित्र, नारद, नागरी हितैषी, तत्व दर्शन, मेल-मिलाप इत्यादि	विभाजन पूर्व बांग्लादेश
9	नेपाल, हीमोवत संस्कृत, हिमालय, नव नेपाल इत्यादि	नेपाल
10	भारतीय, विश्वबन्धु, आर्यबन्धु, आर्यजगत, शान्ति, सुधाकर, क्षत्रिय पत्रिका, मित्र विलास, बूटी दर्पण, आकाशवाणी, आर्य प्रभा, उषा इत्यादि	विभाजन पूर्व पाकिस्तान
11	अखिल फीजी कृषक संघ, किसान, किसान मित्र, जय फीजी, सनातन संदेश, संस्कृति, फीजी संदेश, शांति दूत, जागृति, फीजी समाचार, फीजी सरकार, पुस्तकालय, वृद्धि, पैसेफिक, वृद्धि वाणी, तारा इत्यादि	फीजी
12	चीन सचित्र	बीजिंग

### निष्कर्ष

जनसंख्या की दृष्टि से द्वितीय स्थान प्राप्त भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी सम्पूर्ण विश्व में अधिक बोली जाने वाली भाषा के रूप में भी दूसरे स्थान पर है। हिन्दी को विश्वभाषा का पद दिलाने में विज्ञापन अर्थात् पत्र - पत्रिकाओं, फिल्मों, धारावाहिकों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इस का ज्वलन्त उदाहरण है - संयुक्त अरब अमीरात देश जिसकी पहचान सिटी ऑफ गोल्ड दुबई से है। यू.ई.ई. में एफ. एम. रेडियो के कम से कम तीन ऐसे चौनल हैं, जहां आप चौबीसों घंटे नए अथवा पुराने हिन्दी फिल्मों के गीत सुन सकते हैं। दुबई में पिछले अनेक वर्षों से इंडो-पाक मुशायरे का आयोजन होता रहा है, जिसमें हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के चुनिंदा कवि और शायर भाग लेते रहे हैं। हिन्दी के क्षेत्र में खाड़ी देशों की एक बड़ी उपलब्धि है, दो हिन्दी (नेट) पत्रिकाएं जो विश्व में प्रतिमाह 6,000 से अधिक लोगों द्वारा 120 देशों में पढ़ी जाती हैं। अभिव्यक्ति व अनुभूति [www.abhivyakti-](http://www.abhivyakti-)

hindi.org तथा www.anubhuti-hindi.org के पते पर विश्वजाल (इंटरनेट) पर मुफ्त उपलब्ध हैं । इन पत्रिकाओं की संरचना सही अर्थों में अंतर्राष्ट्रीय है क्योंकि इनका प्रकाशन और संपादन संयुक्त अरब अमीरात से, टंकण कुवैत से, साहित्य संयोजन इलाहाबाद से और योजना व प्रबंधन कनाडा से होता है । कई विद्वानों को विज्ञापन में हो रही आधुनिक मिश्रित हिन्दी से नाराजगी भी है, क्यों कि मिश्रित हिन्दी के प्रसार से हिन्दी अपनी मूल से दूर होती जायेगी । किन्तु संस्कृतोद्भूत होने के कारण हिन्दी में अनेक परिवर्तनों के बावजूद वह अपनी मूल का त्याग सर्वदा नहीं कर पायेगी तथा अनेक भाषाओं के साथ मिश्रित होके अत्यधिक लोकप्रियता के कारण अपने आप को वैश्विक स्तर पर भी प्रथम भाषा का स्थान प्राप्त कर विश्वभाषा का भी श्रेय प्राप्त करेगी।

शोधच्छात्रा ( व्याकरण विभाग )

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,

क.जे.सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,

विद्याविहार, मुम्बई - ७७



# अथर्ववेद में चिकित्सा ( निदान ) विज्ञान

✍ विजेता

संपूर्ण त्रैमालिक ज्ञान दिया, वे हमारे लिये प्रकाशस्तम्भ व शक्ति के स्रोत रहे हैं ।  
वेदों में ज्ञान - विज्ञान का अनन्त भण्डार विद्यमान है ।

चिकित्सा की दृष्टि से अथर्ववेद का स्थान सर्वोपरि है । इसके बहुविध नाम इसकी व्यापकता के ज्ञापक हैं । इसको भिषग्वेद के नाम से भी पुकारा गया है । अथर्ववेद के ब्राह्मण गोपथ में अथर्व के मन्त्रों का आयुर्वेद से सम्बद्ध माना है और अथर्व का अर्थ भेषज किया है ।

अथर्ववेद का एक नाम ब्रह्मवेद भी है । गोपथ ब्राह्मण के अनुसार ब्रह्म शब्द भेषज और भिषग्वेद का बोधक है, कहा गया है - 'जो अथर्व है वह भेषज है, जो भेषज है वह अमृत है, जो अमृत है वह ब्रह्म है ।' अर्थात् भेषज और ब्रह्म समानार्थक है ।

एक प्रसंग में कहा है - अंगीरस का सम्बन्ध शरीर विज्ञान से है । अङ्गों का रस अर्थात् तत्वों का वर्णन जिसमें किया गया हो वह अङ्गीरस । अङ्गों का रस जो निकलता है वह अङ्गूरस है, उसी को अङ्गीरस कहा जाता है । एक अन्यत्र वर्णन के प्रसङ्ग में रसायन विज्ञान को अङ्गूरस कहा गया है ।

औषधियाँ जीवन रक्षक हैं और चिकित्सा की प्रमुख साधन हैं । इनकी चर्चा चारों वेदों में प्राप्त होती है । ऋग्वेद में 67, यजुर्वेद में 82, सामवेद में अतिन्यून तथा सर्वाधिक अथर्ववेद में 288 प्रकार की औषधियों का उल्लेख प्राप्त होता है । इन औषधियों द्वारा विभिन्न रोगों को दूर किया जाता है अतः इन्हें भेषज और सुभेषज कहा गया है । इन औषधियों के रस से दवायें बनायी जाती हैं इससे रोगी की चिकित्सा की जाती है । इन औषधियों के मुख्य दो भेद हैं - वनस्पती और औषधि । वृक्षों के लिये वनस्पति और छोटे पौधों के लिये औषधि शब्द का प्रयोग आया है । पुनः वनस्पति के दो भेद हैं - बृहदाकार वाले वृक्ष वनस्पति तथा अपेक्षाकृत छोटे वृक्षों के लिये वानस्पत्य शब्द आता है । इसी प्रकार औषधि के भी दो भेद हैं - औषधि आर वीरुध । छोटे पौधों के रूप में औषधि और लता गुल्म के रूप में वीरुध शब्द का प्रयोग किया गया है । काशिकाकार ने भी वनस्पती और औषधि का यही भेद माना है -

फली वनस्पतिर्ज्ञेयो वृक्षाः पुष्पफलोपगाः ।

## संगोष्ठी सौरभ

ओषधायः फलपाकान्ताः लता गुल्माश्च वीरुधाः॥

( अथर्व. १२/४/१७ )

अथर्ववेद में ओषधियों के इन चारों प्रकार के भेदों का उल्लेख प्राप्त होता है ।

अथर्ववेद में चार प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों का प्रतिपादन किया गया है ।

आथर्वणी रारिसीदैवीर्मनुष्यजा उत ।

औषधायः प्रजायन्ते यथा त्वं प्राण जिन्वसि ॥

( अथर्व. ११/४/१६ )

इन चारों चिकित्सा विधियों के सम्बन्ध में थोड़ा प्रकाश डालना चाहूँगी -

1. **आथर्वणी चिकित्सा** - शान्तियुक्त प्रक्रिया से की जानेवाली चिकित्सा पद्धति ।  
यथा - यज्ञ, जप, प्राणायामादि द्वारा । शतपथ ब्राम्हण में यजुर्वेद के एक मन्त्र की व्याख्या के प्रसङ्ग में प्राण को अथर्व कहा गया है । इसका अभिप्राय है प्राणविद्या या जीवन विद्या ही आथर्वण विद्या है । इसी को मानसिक चिकित्सा (Psycho Therapy) भी कह सकते हैं ।
2. **आङ्गरसी चिकित्सा** - अङ्गरस रक्त चढ़ाना, निकालना या शल्यक्रिया की पद्धति इसके अन्तर्गत आती है । इसी को हम सर्जरी (Surgery) कहते हैं ।
3. **दैवी चिकित्सा** - पृथिव्यादि पंचतत्त्वों को देव कहते हैं, जिससे हमारा शरीर बना हुआ है । सूर्य चन्द्र भी देव हैं अतः मृत् (मिट्टी से ) **चिकित्सा**, **जलचिकित्सा**, **वायुचिकित्सा**, **सूर्यचिकित्सा** आदि इस चिकित्सा पद्धति के अङ्गोभूत हैं । अथर्ववेद के एक सूक्त में पाँच आरोग्यकारक तत्वों का उल्लेख है- (क)पर्जन्य (वर्षा का जल) (ख) मित्र (प्राणशक्ति) (ग) वरुण (सामान्य जल) (घ) सूर्य और (ङ) चन्द्र । वर्षा का जल शुद्ध और रोगनाशक होता है। प्राणवायु शरीर को शक्ति प्रदान करता है । जल शरीर के दूषित तत्वों को बाहर निकालता है । चन्द्रमा ओषधियों का राजा है यह इन्द्रियों और मन को शान्ति एवं शक्ति देता है तथा सूर्य शरीर का पोषक व रक्षक है । इन पंचतत्त्वों के लिए 'शतवृष्यम्' विशेषण आया है जिसका अर्थ है सौ गुनी शक्ति वाला । आधुनिक विज्ञान के अनुसार इसे प्राकृतिक चिकित्सा (Naturopathy) भी कह सकते हैं।
4. **मनुष्यज** - **मानवीय चिकित्सा** - मनुष्यों द्वारा निर्मित चूर्ण, अवलेह, आसव, अश्रिष्ट, भस्मादि प्रयोग की पद्धति । यह चिकित्सा ओषधि चिकित्सा है । अतः इसे (Drug Therapy) कह सकते हैं ।

## संगोष्ठी सौरभ

अथर्ववेद का प्रारम्भ ही मेघाजनज - बुद्धिवर्धन से होता है तदनन्तर दूसरा सूक्त है रोगोपशमन - रोगों के नाश के लिये है । इस प्रकार इस वेद में प्रमुख रूप से वर्णित चिकित्सकीय विषय हैं - भैषज्य शरीरांग दीर्घायुष्य नीरोगता तेज वर्चस्व वशीकरण वाजीकरण रोगनाशन विभिन्न मणियाँ विविध औषधियों का नाम और गुण रोग नाम और उसकी चिकित्सा, कृमिनाशन, दुःस्वप्ननाशन, सूर्य चिकित्सा, जल चिकित्सा, विष चिकित्सा, पशु चिकित्सा, प्राण चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, स्त्रीचिकित्सा, बाल चिकित्सा, आदि ।

दीर्घायुष्य से सम्बन्धित सैकड़ों मन्त्र चारों वेदों में प्राप्त होते हैं । इन मन्त्रों में विभिन्न देवों से दीर्घायु की प्रार्थना की गई है । अनेक मन्त्रों में कहा गया है - हम नीरोग रहते हुए सौ वर्ष या उससे भी अधिक वर्षों तक देखें, सुनें, बोलें, जीवित रहें और उन्नति करें । दीर्घायु की कामना सौ वर्ष तक सीमित न रहकर

**‘भूयश्च शरदः शतात्’ (यजुर्वेद ३६/२४)**

पर्यन्त की गई है । एक स्थान पर कहा गया है - कश्यप और जमदग्नि 300 वर्षों तक जीवित हैं । अथर्ववेद में इससे भी आगे बढ़कर पूर्ण और सहस्र वर्ष तक की आयु की कामना की गई है । साथ ही कतिपय मन्त्रों में दीर्घायु और सहस्रायु की प्राप्ति के कुछ उपाय भी बताये गये हैं । यथा -

1. **सूक्त** - सत्कर्मों को करना, 2. **आवृतो ब्रह्मणा वर्मणा** - ज्ञानरूपी कवच का आश्रय लेना, 3. **ज्योतिषा वर्चसा च** - जीवन तेजस्वी और वर्चस्वी हो, 4. **ऋतेन गुप्तः** - सत्य भाषण और सत्य व्यवहार का आश्रय लेना, 5. **ऋतुभिश्च सर्वे : गुप्तः** - ऋतू के अनुसार जीवन चर्या बनाना, 6. **मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्यु** - मृत्यु या अल्पायु के कारण पाप या दुष्कर्म हैं इनका परित्याग करना, 7. **अग्निर्मा गोप्ता** - अग्नि-जठराग्नि हमारी रक्षिका हो, 8. **उद्यन सूर्यो नुदतां मृत्युपाषाण्** - उदय होता हुआ सूर्य मृत्यु के कारणों को नष्ट कर दे, 9. **व्युच्छन्तीः उषसः** - उषाकाल - ब्राह्ममुहूर्त में उठकर ध्यानादि नित्यकर्म से निवृत्त होना, 10. **पर्वताः ध्रुवाः** - पर्वतोंका आश्रय लेना अर्थात् स्वच्छ वायु का सेवन करना, 11. **सहस्रं प्राणाः मयि आ यतन्ताम्** - उपर्युक्त सभी साधन मनुष्य को सौ गुनी या हजार गुनी प्राणशक्ति देकर सहस्रायु बनाते हैं ।

इसी प्रकार रोग के कारण बताये हैं - शारीरिक और मानसिक । शारीरिक दोषकारक हैं - तमस् और रजस् । चरक का कथन है - शारीरिक और मानसिक दोषों से रहित व्यक्ति को रोग नहीं होता है - **तस्य पक्वतिरुद्दिष्टा दोषा : शारीरमानसा : ।**

**देहिं नहि निर्दोषं रोग : समुपसेवते ॥**

(अथर्व. १/४/१)

ज्वर को सारे रोगों में मुख्य माना गया है । अतः इसका सम्बन्ध शरीर के किसी भाग विशेष से न होकर सारे शरीर से होता है अतः यह रोगों में अग्रगण्य है । अथर्ववेद में शताधिक रोगों की चर्चा की गई है । ज्वर के लिये इसमें 'तक्मन्' शब्द आया है । वेदों में ज्वर चिकित्सा के लिये अनेक ओषधियों का उल्लेख किया गया है जिसके प्रयोग से ज्वर ठीक होता है । साथ ही ज्वरग्रस्त व्यक्ति के लिये यज्ञ, जल चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा वायु चिकित्सा आदि विविध उपाय भी बताये गये हैं ।

अथर्ववेद में कतिपय ओषधियों को विश्वभेषज अर्थात् सभी रोगों की ओषधि कहा गया है । प्रस्तुत है यहाँ स्थालीपुलाक न्याय से कुछ ओषधियों के नाम - 1. अपामार्ग - इस ओषधि की तीन सूक्तों में प्रशंसा की गई है । अपामार्ग शब्द की व्याख्या की गई है - अपामार्गः अप मार्षुः (4/17 - 19) अतः यह सब रोगों को दूर करता है अतः इसका नाम अपामार्ग है । कहा गया है अपामार्ग ओषधि जहाँ होती है वहाँ रोग का भय नहीं होता है । ( न तत्र भयमस्ति 14/19/2 ) 2. कुष्ठ जिसको कूठ कहते हैं इसको चर्चा पूरे सूक्त में की गई है 3. जडिगड मणि इसको अर्जुन का वृक्ष कहते हैं इसकी चर्चा कतिपय स्थानों में की गई है । 4. गुग्गुलु 5. शंखमणि 6. वरणमणि 10/ 3/1-25 इस सूक्त में 25 मन्त्र हैं इसे सब प्रकार से मृत्यु से बचाने वाला कहा गया है । 7. जल 8. नितली दो सूक्तों में इसका गुणगान किया गया है । यह केशवर्धन तथा केशाहण के लिये है । प्रसङ्गतः बता दूँ । केश काला करने के लिये शामा ओर सरुपंकरणी 9. ओषधियों का भी उल्लेख आया है ।

कतिपय ओषधियाँ विश्वभेषज तो नहीं हैं पर है बहुत महत्वपूर्ण तद्यथा खदिर (मणि) इसको धारण करने वाला सर्वरोग मुक्त होकर तेजस्वी हो सकता है । पिप्पली - यह वातरोग की अमोघ ओषधि है । इसे अमीवचातन - अर्थात् इसका सेवन करनेवाला कभी रोगग्रस्त नहीं होता कहा गया है । पतद्रु - देवदार रोगनाशक ओषधि है । शतावार - शतावर इसको दुर्णामचातन अर्थात् जिसका नाम ही कुत्सित है यानी कुष्ठरोग और बवासीर को दूर करने वाला । उदुम्बर - गूलर यह धन धान्य श्री एवं नेत्रवर्धन का साधन माना गया है । रोहिणी - टूटी हुई हड्डी को जोड़ने की अचूक औषधि है । चीपद्रु - चीड़ यह समस्त चर्मरोग नाशक औषधि है आज्जन - यह समस्त चर्मरोग नाशक औषधि है आज्जन - यह खनिज और वृक्ष दोनों प्रकार का है यह नेत्र ज्योतिर्वर्धक है । एक स्थल एक औषधि का नाम सुपर्ण की कनीनिका दिया है । इसके प्रयोग से दिव्यदृष्टि की प्राप्ति होती है ऐसा उल्लेख है । अपचित् - यह गण्डमाला की चिकित्सार्थ अनुपम औषधि है । गण्डमालायें सैकड़ों प्रकार की होती है आदि ।

## संगोष्ठी सौरभ

---

इसी प्रकार शल्यक्रिया से सम्बन्धित सुविस्तृत चर्चा भी उपलब्ध होती है उसके 8 प्रकार बताये हैं । कतिपय अति रहस्यात्मक विद्यायें प्रवर्ग्य और अपिकक्ष्य आदि का भी उल्लेख किया गया है जा चमत्कारिक प्रयोग जैसी लगती हैं ।

इत्थं प्रकारेण संक्षेपत : कहा जा सकता है आरोग्यता दो प्रकार की होती है एक व्यक्ति और दूसरी समाज की । दोनों ही प्रकार की आरोग्यता के सूत्र प्रभूतरूप से अथर्ववेद में उपलब्ध होते हैं वस्तुतः चिकित्सा शास्त्र का उत्स अथर्ववेद ही है ।

( शोधाच्छात्र )

रा.सं.सं. गरली परिसर



# शारीरिक शिक्षा एवं महर्षि पतंजलि कृत योग

वेदप्रकाश आर्य

### शारीरिक शिक्षा :-

शारीरिक शिक्षा का शाब्दिक अर्थ तो 'शरीर की शिक्षा है' परन्तु इसका भाव शरीर तक सीमित नहीं है। वास्तव में शारीरिक शिक्षा के द्वारा बालक का शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, नैतिक एवं आत्मिक, विकास होता है, उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व सुगठित होता है। शारीरिक शिक्षा केवल शारीरिक क्रिया नहीं है। शारीरिक शिक्षा, शिक्षा ही है। यह वह शिक्षा है जो शारीरिक क्रियाओं द्वारा बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व, शरीर, मन एवं आत्मा के पूर्ण विकास हेतु दी जाती है।

### शारीरिक शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य :-

शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति में शारीरिक शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। खेल के मैदान में, धरती माता की धूल में ही बालक के व्यक्तित्व का वास्तविक गठन होता है। खेलों के द्वारा स्फूर्ति, बल, निर्णय शक्ति, संतुलन, साहस, सतकर्ता, आगे बढ़ने की वृत्ति, मिलकर काम करने की आदत, हार जीत में समत्व-भाव, अनुशासनबद्धता आदि शारीरिक, नैतिक, सामाजिक एवं आत्मिक गुणों का विकास होता है। शारीरिक क्रियाकलापों में व्यक्ति खुलकर बाहर आता है। भीतर की कुछ कुंठाएं, घुटन, निराशा आदि खेल की मस्ती में घुल जाती है। उत्साह उमड़ता है। क्रियाशीलता बढ़ती है, और उसे योग्य दिशा मिलती है। आनंद की प्राप्ति होती है, और आनंद में ही मानव के विकास की प्रेरणा निहित है।

शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य एवं लक्ष्य प्रत्येक बालक को शारीरिक मानसिक और भावनात्मक रूप से स्वस्थ बनाना और उसमें नैतिक व सामाजिक मूल्यों का विकास करना है जो दूसरों के साथ खुशी से प्रसन्नता पूर्वक रहने वाले एक अच्छा नागरिक बनाने में सहायक हो शारीरिक शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास नाड़ी संस्थान तथा मांस पेशी संस्थान में समन्वय स्वास्थ्य का विकास सामाजिक विकास भावनात्मक विकास मानव विकास शारीरिक विकास है।

### शारीरिक शिक्षा के अंग :-

भारतीय मनोविज्ञान में मानव की भौतिक काया को स्थूल शरीर कहा गया है। इस स्थूल शरीर के दो भाग हैं। स्थूल देह को अन्नमय कोश एवं दुसरे भाग को प्राणमय कोश कहा गया है। अतः शारीरिक शिक्षा के अंतर्गत अन्नमय कोश और प्राणमय कोश-दोनों का

विकास सम्मिलित है। सामान्य भाषा में अन्नमय कोश के विकास को शारीरिक विकास एवं प्राणमय कोश के विकास को संवेगात्मक विकास कहा जाता है।

**शारीरिक शिक्षा के मूल तत्व :-**

**‘शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम् ।’<sup>१</sup>(कुमारसम्भवम् 5/33)**

किसी भी कार्य को करने के लिए शिक्षा एवं ज्ञान, विज्ञान, आत्मज्ञान की प्राप्ति एवं ज्ञान, कर्म उपासना अथवा धर्म संपादन के लिए शरीर सबसे पहली आवश्यकता है, एवं ही मुख्य आधार है।

शरीर समस्त धर्म का साधन है। हमारी ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति की भी अभिव्यक्ति का माध्यम शरीर ही हैं। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन निवास करता है। जीवन के सुख के लिए स्वस्थ मन आवश्यक है। इस स्वस्थ मन के लिए शरीर का स्वस्थ होना आवश्यक है। शरीर के स्वास्थ्य के लिए शारीरिक शिक्षा का महत्व सभी ने स्वीकार किया है। यह उक्ति प्रसिद्ध है कि बाहुबल से रक्षित राष्ट्र ही शास्त्र का चिंतन कर सकता है। शारीरिक शिक्षा सेव्यक्ति में जो पौरुष, बल एवं शक्ति का विकास होगा, उसी से हमारे देश में अध्ययन, अनुसन्धान, देश की सीमा की रक्षा, विश्व में शांति, कल-कारखानों तथा खेत-खलिहानों में उत्पादन की वृद्धि संभव होगी। शारीरिक प्रशिक्षण से छात्रों में सामूहिक एकता की भावना अनुशासन एवं व्यवस्थित कार्य करने की अभूतपूर्व क्षमता उत्पन्न होती है। उससे स्वस्थ समाज का निर्माण होता है। इस प्रकार शारीरिक शिक्षा व्यक्ति, समाज राष्ट्र एवं विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है।

अतः शरीर का स्वस्थ रहना अत्यंत आवश्यक है, रोगी अथवा अस्वस्थ शरीर के द्वारा कोई भी कार्य करना संभव नहीं है।

**आचार्यचाणक्य कहते हैं कि -**

**सर्वमेव परित्यज्य शारीरम् अनुपालयेत् ।**

**शरीरस्य प्रणष्टस्य सर्वमेव विनश्यति ॥<sup>२</sup> (चाणक्य निति)**

अर्थात् - सब का परित्याग कर, सब कुछ छोड़ कर सर्वप्रथम शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा करें क्योंकि शारीरिक स्वास्थ्य के नष्ट होने पर सब कुछ विनष्ट हो जाता है।

अब प्रश्न यह है कि - **स्वस्थ कौन है ?**

**स्वास्थ्य :-**

स्वास्थ्य एवं स्वस्थ व्यक्ति की पहचान व परिभाषा बताते हुए महर्षि सुश्रुत कहते हैं -

**समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः।**

**प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥<sup>3</sup>** (सुश्रुत सं.सू.15/10)

अर्थात् - जिसके (वात-पित्त-कफ) तीनों दोष सम हो, जिसकी जठराग्नि (पाचन क्रिया) सम हो जिसकी धातुओं (रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा- शुक्र/वीर्य) की क्रिया सम हो (क्षय-वृद्धि से रहित) जिसकी मलों (स्वेद-मूत्र-पुरीष) की क्रिया सम हो, जिसकी आत्मा, दसों इंद्रियां (पांच ज्ञानेन्द्रियां - पांच कर्मेन्द्रियां ) और मन प्रसन्न (निर्मल अविकारी) हो ऐसे व्यक्ति को स्वस्थ कहते हैं ।

**महर्षि दयानंद सरस्वती के शारीरिक शिक्षा के प्रति विचार :-**

महर्षि दयानंदसरस्वती ने शारीरिक बल पर अत्यधिक आग्रह किया है । उनके शब्दों में 'अनन्त शक्ति ही धर्म है । **बल पुण्य है, और दुर्बलता पाप** । सभी पापों और सभी बुराइयों के लिए एक ही शब्द पर्याप्त है और वह गई-दुर्बलता आज हमारे देश को जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह है लोहे की मांसपेशियां और फौलाद के स्नायु, दुर्दमनीय प्रचंड इच्छाशक्ति, जो सृष्टि के गुप्त तथ्यों और रहस्यों को भेद सके और चाहे उसके लिए समुद्र तल में ही क्यों न जाना पड़े-साक्षात् मृत्यु का ही सामना क्यों न करना पड़े । मेरे नवयुवक मित्रों ! बलवान बनो । तुम को मेरी सलाह है । गीता के अभ्यास की अपेक्षा फुटबाल खेलने के द्वारा तुम स्वर्ग के अधिक निकट जाओगे । तुम्हारी कलाई और भुजाएं अधिक सुदृढ़ होने पर तुम गीता को अधिक अच्छी तरह समझोगे । तुम्हारे रक्त में शक्तिकी मात्र बढ़ने पर तुम श्रीकृष्ण की महान प्रतिभा और अपार शक्ति को अच्छी तरह समझने लगोगे । तुम जब पैरों पर दृढ़ता के साथ खड़े होगे और तुमको जब प्रतीत होगा कि हम मनुष्य है, तब तुम उपनिषदों को और भी अच्छी तरह समझेंगे और आत्मा की महिमा को जान सकेंगे ।'

**योग- :**

योग विद्या भारत के ऋषि मुनियों की अमूल्य धरोहर है । सभी श्रुति स्मृतियाँ योग की महिमा का वर्णन कर रही हैं । समाधि से कर्मक्षेत्र तक योग का व्यापक वर्णन हमारे शास्त्रों में विद्यमान है । योग सभी संप्रदायों और मत-मतांतरों में निर्विवाद सार्वभौम स्वीकार्य धर्म है ।

संस्कृत व्याकरण शास्त्र के अनुसार महर्षि पाणिनि योग शब्द की निष्पत्ति/वर्णन युज् धातु से 'युज्-समाधौ', 'युजिर-योगे' और 'युज-संयमने' अर्थ में करते हैं । अर्थात् हम कह सकते हैं कि - संयमपूर्वक साधना करते हुए स्वचेतना को परमचेतना में लय कर देना या आत्मा का परमात्मा से मिलन ही योग है ।

## संगोष्ठी सौरभ

योग के उपदेष्टा महर्षि पतंजलि योग के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं -

**योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ।<sup>६</sup>** (योगदर्शन 1/2)

अर्थात् - चित्त की वृत्तियों को रोकना ही योग है बहिर्मुखी वृत्तियों को सांसारिक विषयों से हटाकर अंतर्मुखी करके अपने कारण चित्त में लीन कर देना ही योग है । वृत्तियाँ जितनी बहिर्मुखी होती जाएंगी, उतनी ही उनमें रज और तम की मात्र बढ़ती जाएगी और उसके विपरीत जितनी वृत्तियाँ अंतर्मुखी होंगी, उतना ही रज और तम के तिरोभावपूर्वक सत्त्व का प्रकाश बढ़ता जाएगा ।

**योग के अंग -:**

महर्षि पतंजलि ने योग की व्याख्या करते हुए योग के आठ अंग बताए हैं ।

**यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयः अष्टौ अङ्गानि ॥<sup>६</sup>** (योगदर्शन 2/29)

अर्थात्: यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि यह योग के आठ अंग हैं । इस अखिल विश्व में जो भी व्यक्ति अस्तित्व की खोज में लगा है उसे अष्टांग योग का परिपालन अवश्य ही करना चाहिए ।

**यहां योग के द्वितीय अंग नियम का ही विवेचन वांछनीय है ।**

**नियम:-**

जिस प्रकार प्रत्येक कार्य को फल बनाने के लिए कुछ नियमों का पालन करना आवश्यक है, उसी प्रकार योग साधना में भी आगे बढ़ने के लिए कुछ नियमों का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। महर्षि पतंजलि ने नियमों की व्याख्या करते हुए नियम भी पाँच प्रकार बताए हैं

**शौचसन्तापतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।<sup>६</sup>** - यो.द. 2/32

अर्थात् शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान - ये पाँच नियम हैं जो प्रत्येक साधक के लिए अनुकरणीय हैं ।

**शौच:-**

शौच का अर्थ यहाँ शुद्धि या पवित्रता से है । शौच भी दो प्रकार का होता है । बाह्य और आभ्यन्तर । बाह्य शौच में शरीर की शुद्धि, वस्त्रों की शुद्धि और अपने आसपास के वातावरण की शुद्धि आती है। आभ्यन्तर शौच में विचारों एवं संस्कारों की शुद्धि आती है । महाराज मनु ने शुद्धि के लिए बहुत ही सुन्दर कहा है-

**अदिर्भर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।**

**विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥<sup>७</sup>** -मनु. 5-11

अर्थात् जल से शरीर के अंग प्रत्यंग शुद्ध होते हैं । सत्य का पालन करने से मन की शुद्धि होती है तथा ज्ञानार्जन से बुद्धि होती है । शौच अर्थात् पवित्रता का पालन शारीरिक, वाचिक और मानसिक स्तर पर ठीक प्रकार से करना चाहिए ।

शरीर के प्रति आसक्ति शरीर ही जीवात्मा के बन्धन का मुख्य कारण है । यदि जागरूकतापूर्वक शौच का पालन किया जाए तो शरीर में आसक्ति समाप्त हो जाती है । इसी विषय में महर्षि पतंजलि कहते हैं -

**शौचात् स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः ।** <sup>8</sup> - योग.2/4

अर्थात् जब साधक शरीर की शुद्धि करते हुए, अपने शरीर से मल-मूत्र, वात, पित्त, कफ आदि निकलते हुए देखता है, तो उसे अपने ही शरीर से विरक्ति हो जाती है । दूसरे के शरीर को स्पर्श करने की इच्छा नहीं रह जाती । यह बाह्य शौच के पालन का फल है ।

**महर्षि पतंजलि आन्तरिक शौच के पालन का फल बताते हैं -**

**सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्रयेन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ।** <sup>9</sup> - यो.द.2/41

अर्थात् आभ्यन्तर शौच का पालन करने से चित्त की शुद्धि होती है । मन की एकाग्रता बढ़न लगती है । साधक सभी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार इन्द्रिय मन, बुद्धि, चित्त के शान्त-सौम्य और एकाग्र होने से साधक में आत्मदर्शन की योग्यता आ जाती है।

**सन्तोष:-**

अपने पास उपस्थित सभी साधनों के द्वारा पूर्ण पुरुषार्थ करने पर जो भी पदार्थ प्राप्त हों, उससे अधिक की इच्छा न रखना ही सन्तोष कहलाता है ।

**महाराज मनु सन्तोष के विषय में कहते हैं-**

**सन्तोष परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।**

**सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥** <sup>10</sup> - मनु. 4-12

अर्थात् पंच महायज्ञों का पालन करते हुए अपने शरीर की शक्ति के अनुसार अपने परिवार, अतिथि, भृत्य, पशु तथा अपने जीवन के लिए जितना धान उपार्जन करना है, उतना ही अर्जित करना सन्तोष कहलाता है । क्योंकि सन्तोष ही सुख का स्रोत है । इसके विपरीत आचरण ही सभी दुःखों का मूल कारण है ।

**सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ।** <sup>11</sup>-यो.द 2/12

अर्थात् सन्तोष का पालन करने से मनुष्य को उत्तम सुख की प्राप्ति होती है । फिर उसे जीवन में कोई क्लेश नहीं सताता ।

तपः-

तपस्वी मनुष्य कठिन समय को भी सहजभाव से व्यतीत कर सकता है। योग दर्जन के भाष्य में व्यास ऋषि कहते हैं-

‘तपो द्वन्द्व सहनम् द्वन्द्वश्च जिघत्सापिपासेषीतोष्णे, स्थानासने, काष्ठमौनाकारमौनेच ।

व्रातनिश्चैवयथायोगं कृच्छ्रचान्द्रायण सान्तपनादीनि’ ॥ <sup>12</sup> -यो.द.व्यास भा.2/32

अर्थात् भूख-प्यास, मान-अपमान, शीत-ऊष्ण, लाभ-हानि, जय-पराजय आदि द्वन्द्वों को सहन करना, आसन के कष्टों को सहन करना, मौन धारण करना, चान्द्रायण, सान्तपन आदि व्रतों का अभ्यास करना तप कहलाता है ।

महाभारत में जब महाराज युधिष्ठिर से यक्ष प्रश्न पूछते हैं कि ‘‘तपसः किं लक्षणम्’’<sup>13</sup> तब युधिष्ठिर उन्हें उत्तर देते हैं ‘तपः स्वधर्म वर्तित्वम्’<sup>14</sup> अर्थात् हे यक्ष कर्तव्य पालन में जो भी बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, उनको सहन करते हुए निरन्तर अपने धर्म का परिपालन करना तप है।

यह तप तभी सिद्धि दायक होता है, जब इसका अभ्यास कायिक, वाचिक व बौद्धिक तीनों स्तरों पर किया जाता है । जो मनुष्य केवल शरीर की तपश्चर्या में लगे रहते हैं, जैसे एक पैर पर खड़े होना या अग्नि के मध्य में तप करना, इस प्रकार के तप तामसिक तप कहलाते हैं । इनके करने से विशेष आध्यात्मिक लाभ नहीं मिलता, अपितु शरीर में हानि की सम्भावनाएँ बनी रहती हैं और जिस समय तप के द्वारा मन और बुद्धि को पवित्र एवं काम, क्रोध, लोभ और मोह आदि दुर्गुणों को नष्ट किया जाता है । इस प्रकार का तप सात्विक तप कहलाता है और वह लक्ष्य को प्राप्त कराने वाला भी होता है।

तप के अनुष्ठान का फल महर्षि पतंजलि बताते हैं-

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।<sup>15</sup> - यो.द. 2/43

अर्थात् कायिक, वाचिक और बौद्धिक तप के अभ्यास से शरीर और इन्द्रियों की अशुद्धि नष्ट हो जाने से वे इतने शुद्ध और हल्के हो जाते हैं कि अणिमा, महिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ साधक में प्रकट होने लगती हैं ।

महर्षि व्यास भी तप के महत्त्व को दर्शाते हुए कहते हैं-

नातपस्विनो योगःसिद्ध्यति । अनादिकर्मक्लेशवासनाचित्र प्रत्युपस्थितविषयजाला

चाशुद्धिर्नन्तरेण तपः सम्भेदमापद्यत इति । <sup>16</sup> - यो.द.व्यास भा. 2/1

अर्थात् तप के बिना योग सिद्ध नहीं होता, क्योंकि अनादिकाल से कर्म वासनाएँ और क्लेशों से युक्त चित्त बिना तप के शुद्ध नहीं हो सकता । इस वासना जाल को नष्ट करने में तप ही समर्थ है ।

**स्वाध्याय:-**

स्वाध्याय का अर्थ है **स्व+अध्ययन**, अर्थात् अपना अध्ययन करना, स्वयं का निरीक्षण करना, स्वयं का निरीक्षण करते हुए स्वयं को जानना । स्वाध्याय का अर्थ है -“**सु-अध्ययनं स्वाध्यायः ।**”

अर्थात् उत्तम शास्त्रों का अध्ययन स्वाध्याय कहलाता है, क्योंकि ये जीवात्मा को उसके स्वरूप की ओर ले जाते हैं । योग भाष्यकार महर्षि व्यास स्वाध्याय का लक्षण इस प्रकार करते हैं - **प्रणवादिपवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राध्ययनं वा ।**<sup>17</sup> - यो.द. व्यास भा. 2/1

अर्थात् ओंकार, गायत्री आदि मन्त्रों का जप करना तथा वेद-उपनिषद् आदि मोक्षदायक शास्त्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है । क्योंकि इनसे चित्त की शुद्धि होती है तथा आत्मज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है ।

**स्वाध्याय का फल बताते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं-**

**स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रमोषः ।**<sup>18</sup> - यो.द. 2/44

अर्थात् स्वाध्यायशील साधक को देव, मन्त्रद्रष्टा ऋषि और सिद्ध पुरुषों की आत्मिक प्रेरणा होती है और जब-जब योग साधना करते हुए कोई व्यवधान आता है, तो सिद्ध पुरुष उन साधकों का मार्गदर्शन भी करते हैं, जिससे साधना में उत्तरोत्तर प्रगति होती है ।

**ईश्वरप्रणिधान:-**

ईश्वर प्रणिधान, नियम का पाँचवा व अन्तिम अंग है । योग भाष्यकार व्यास जी इसको स्पष्ट करते हैं-

**ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणांपरमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा ।**<sup>19</sup> - यो.द. व्यास भा. 2/1

अर्थात् शरीर, वाणी और बुद्धि से जितने भी कर्म किए जाते हैं, प्रत्येक छोटी से छोटी क्रिया को परमपिता परमात्मा को अर्पण करते जाना तथा उनके फलों को भी ईश्वर को ही अर्पित करते जाना ईश्वर प्रणिधान है ।

महर्षि पतंजलि परमगुरु के रूप में ईश्वर को ही प्रतिष्ठित करते हुए कहते हैं-

**पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।**<sup>20</sup> - यो.द. 1/26

अर्थात् वर्तमान से लेकर पूर्व में जितने भी आचार्य या गुरु हुए हैं, न सब गुरुजनों का भी गुरु होने से ईश्वर परमगुरु है, क्योंकि उसका काल के द्वारा कभी नाश नहीं होता । महर्षि पतंजलि ने योग परम्परा का प्राचीनकाल से चला आना बताया है । जिसका वर्णन श्रुति और स्मृति में पाया जाता है ।

**हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः । 21- याज्ञवल्क्य स्मृति**

हिरण्यगर्भ योग के वक्ता हैं, इनसे पुरातन और कोई नहीं है । हिरण्यगर्भ किसी भौतिक मनुष्य का नाम नहीं, अपितु परमात्मा का वाचक है । यह सम्पूर्ण संसार परमात्मा का गर्भ है, हम सभी भूत प्राणी उसके गर्भ में ही निवास कर रहे हैं । इसलिए परमात्मा का एक नाम हिरण्यगर्भ भी है ।

जिस प्रकार अष्टांग योग का पालन करते हुए मानव समाधि लाभ प्राप्त करता है। वह कार्य केवल ईश्वर प्राणिधान से भी हो सकता है ।

**महर्षि पतंजलि कहते हैं-**

**समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।<sup>22</sup> - यो.द. 2/45**

ईश्वर के प्रति समर्पित भाव में रहने से चित्त निर्मल हो जाता है और निर्मल चित्त में ही आत्मा का साक्षात्कार होता है ।

**उपसंहार :-**

शारीरिक शिक्षा, शिक्षा पद्धति का अभिन्न अंग है जिसका उद्देश्य नागरिकों को शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, तथा सामाजिक रूप से शारीरिक गतिविधियों के माध्यमों से, जो कि उनकी गतिविधियों के परिणामों को दृष्टिगत रखकर चुनी गई हो, उन्हें योग्य बनाना है ।

तो आइए हम सब मिलकर महर्षि पतंजलि के बताए योगदर्शन एवं योगमार्ग का अनुसरण करते हुए शारीरिक शिक्षा एवं ज्ञान, विज्ञान, आत्मज्ञान की प्राप्ति एवं ज्ञान, कर्म उपासना के माध्यम से अपने जीवन को सफल बनायें ।

**सन्दर्भ**

1. कुमारसम्भवम् 5/33 ।
2. चाणक्य नीति ।
3. सुश्रुत सं.सू.15/10 ।
4. यो. द. 1/2 ।
5. यो. द. 2/29 ।
6. यो. द. 2/32 ।
7. मनु. 5/11 ।
8. यो. द. 2/4 ।
9. यो. द. 2/41 ।
10. मनु. 4-12 ।

11. यो. द. 2/12 ।
12. यो. द. व्यास भा. 2/32 ।
13. महाभारतवनपर्व अध्याय - 312/313 ।
14. महाभारतवनपर्व अध्याय - 312/313 ।
15. यो. द. 2/43 ।
16. यो. द. व्यास भा. 2/1 ।
17. यो. द. व्यास भा. 2/1 ।
18. यो. द. 2/44 ।
19. यो. द. व्यास भा. 2/1 ।
20. यो. द. 1/26 ।
21. याज्ञवल्क्य स्मृति ।
22. यो. द. 2/45 ।

जे,जे,टी,विश्वविद्यालय,  
झुन्झुनू ( राज.ऋ )

